# परिप्रेक्ष्य

## शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2012
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक
**परिप्रेक्ष्य**
राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17–बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी–275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. अनिल आफसेट एंड पैकेजिंग प्रा. लि., दिल्ली–110007 में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

# विषय सूची

*आलेख*

**नमिता रंगनाथन, ऋषभ कुमार मिश्र** और **वर्त्तिका चौधरी**
सड़क पर बीता अनूठा बचपन : स्ट्रीट चिल्ड्रेन की मनोसामाजिक दुनिया का विश्लेषणात्मक अध्ययन 1

**ए.पी. पाण्डेय** और **संतोष शर्मा**
सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत शिक्षकों को प्रदान की जाने वाली शिक्षक अनुदान राशि के उपयोग का समीक्षात्मक अध्ययन 17

**नरेश कुमार भोक्ता** और **रूक्मिणी चौधरी**
भूमंडलीकरण के दौर में परम्परागत भारतीय शिक्षा की प्रासंगिकता 41

**सूफिया नाज़नीन**
मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत का अध्ययन 49

**शोभारानी दुबे**
प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा 65

*शोध टिप्पणी / संवाद*

**पारथ प्रसाद** और **मधु कुशवाहा**
सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का वातावरण और अभिभावकों तथा विद्यार्थियों की प्रत्याशाएँ 83

**सुभाष सिंह**
बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन 93

**गुर प्यारी सतसंगी**
उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर माता–पिता के प्रोत्साहन का प्रभाव 103

**आर.पी. पाठक** और **अमिता पाण्डेय भारद्वाज**
जैन एवं बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षक की संकल्पना 111

*चिंतक और चिंतन*

**जितेन्द्र कुमार गोयल**
सांख्य दर्शन के मूल सिद्धांत तथा आधुनिक शिक्षा में उनकी प्रासंगिकता 131

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

# सड़क पर बीता अनूठा बचपन
## स्ट्रीट चिल्ड्रेन की मनोसामाजिक दुनिया का विश्लेषणात्मक अध्ययन

**नमिता रंगनाथन*** **ऋषभ कुमार मिश्र**** और **वर्त्तिका चौधरी*****

**सारांश**

*शिक्षा के अधिकार को कानून के रूप में संवैधानिक अधिकार की मान्यता देकर राज्य ने संवैधानिक रूप से यह सुनिश्चित कर दिया कि 14 वर्ष से कम उम्र के प्रत्येक बालक–बालिका शिक्षा को प्रदान करना राज्य का दायित्व हैं। लेकिन इस संवैधानिक सच के उलट भी एक सच है, जिससे हम प्रतिदिन दो–चार होते हैं। वह है परिवार और स्कूल के संस्थागत चौखटे के दायरे से बाहर स्ट्रीट चिल्ड्रेन की मौजूदगी। जहाँ एक ओर इन बच्चों का विद्यालय से बाहर होना इन्हें 'शिक्षा के मूल अधिकार' से वंचित करता है, वहीं यह भी प्रश्न खड़ा करता है कि इन बच्चों के लिए 'बचपन' कस क्या मायने है? क्या इनके लिए बचपन जैसी कोई अनुभूति या अवस्था है भी या नहीं? बचपन को देखने का प्रचलित 'सामान्य और आदर्श' नजरिया इन बच्चों के लिए बचपन की व्याख्या किस प्रकार करेगा? विकासात्मक दृष्टि से बाल्यावस्था के अन्तर्गत आने वाले ये बच्चे जिस प्रकार से वयस्क की भूमिका में हैं, वह हमें विकासात्मक पैमाने पर बचपन–किशोर–युवा की सतता की अवधारणा पर पुन: सोचने को विवश करता है। इन प्रश्नों को समझने के लिए दिल्ली के स्ट्रीट चिल्ड्रेन के जीवनानुभवों का दो वर्षों तक गहन अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के आधार पर इस लेख में स्ट्रीट चिल्ड्रेन से जुड़े विमर्शों — अवधारणा, परिवार से गली तक की सतता और असतता, सामाजिक सक्रियता और शैक्षिक अनुभवों को समझने का प्रयास किया गया है।*

* प्रोफेसर, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (शिक्षा विभाग), दिल्ली विश्वविद्यालय
ई–मेल: namita.ranganathan@gmail.com

** शोधकर्त्ता, केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (शिक्षा विभाग), दिल्ली विश्वविद्यालय
ई–मेल : bpositiverishabh@gmail.com

*** प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय, ई–मेल : vertika@gmail.com

शिक्षा के अधिकार को कानून के रूप में संवैधानिक अधिकार की मान्यता देकर संवैधानिक रूप से यह सुनिश्चित कर दिया गया है कि 14 वर्ष से कम उम्र के प्रत्येक नागरिक की शिक्षा को प्रदान करना राज्य का दायित्व है। आधुनिकता के आईने में राज्य किस प्रकार प्रत्येक प्रयास को 'संस्था की सीमाओं में बाँधकर देखता है, उसी प्रकार इस कानून का क्रियान्वयन भी 'स्कूल' की संस्था से जोड़ दिया गया है। लेकिन इस संवैधानिक सच के उलट भी एक सच है जिससे हम प्रतिदिन दो-चार होते हैं। वह है स्कूल के दायरे से बाहर गलियों और बाजारों में उन बच्चों की मौजूदगी, जिन्हें संवैधानिक रूप से विद्यालय में होना चाहिए था। परिवार और स्कूल संस्थागत चौखटे के दायरे से बाहर ऐसे ही बच्चों के लिए प्रचलित अकादमिक कार्यों में 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' की संज्ञा दी जाती है। जहाँ एक ओर इन बच्चों का विद्यालय से बाहर होना इन्हें 'शिक्षा के मूल अधिकार' से वंचित करता है वहीं यह भी प्रश्न खड़ा करता है कि इन बच्चों के लिए 'बचपन' के क्या मायने हैं? क्या इनके लिए बचपन जैसी कोई अनुभूति या अवस्था है भी या नहीं? उनके अनुभव, दृष्टिकोण और सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया का स्वरूप क्या होगा? 'बचपन' को देखने का प्रचलित 'सामान्य और आदर्श' नजरिया इन बच्चों के लिए बचपन की व्याख्या किस प्रकार करेगा? क्या इस सामान्यता की मान्यता के विपरीत 'बचपन' के 'बहुरूप' मान्यता को स्वीकार किया जा सकता है? विकासात्मक दृष्टि से बाल्यावस्था के अन्तर्गत आने वाले ये बच्चे जिस प्रकार से वयस्क की भूमिका में हैं, वह हमें विकासात्मक पैमाने पर बचपन-किशोर-युवा की सतता की अवधारणा पर पुनः सोचने को विवश करता है। प्रस्तुत लेख में इन प्रश्नों को समझने के लिए और इनके आलोक में स्ट्रीट चिल्ड्रेन के आत्म-विवेचन को आधार बनाते हुए, वृहत्तर सन्दर्भों में, उनके जीवनानुभवों और शैक्षिक अनुभव के विभिन्न आयामों को समझने का प्रयास किया गया है।

## अध्ययन की पृष्ठभूमि

प्रस्तुत लेख का आधार लेखक त्रयी द्वारा किया गया बृहत्तर शोधकार्य है। इस शोध कार्य को तीन चरणों में संपन्न किया गया है। प्रथम चरण का उद्देश्य 'स्काउटिंग' करना था। इसके अन्तर्गत, इन बच्चों के मुख्य कार्यक्षेत्र, बाजारों में हमारे द्वारा पर्याप्त समय बिताया गया। उनसे बातचीत की गयी, इनके कार्यकलापों, गतिविधियों, व्यवहार और दिनचर्या का गहनता से अवलोकन किया गया। इस चरण में अवलोकन के आधार पर इनके दैनिक कार्यों की रूपरेखा समझ में आई। इसके उपरान्त इन बच्चों के साथ समूह चर्चा की गई। इस चर्चा में हमने इनके मनोसामाजिक दुनिया से जुड़े विषयों को चर्चा का केन्द्र बिन्दु बनाया था। इस चरण के समंक, और फील्ड नोट्स के

विश्लेषण के उपरान्त, विषय की गहनता में उतरने के लिए दिल्ली के विभिन्न बाजारों से 20 स्ट्रीट चिल्ड्रेन का व्यक्ति-वृत्त पर गहन अध्ययन किया गया। इस अध्ययन ने, प्रथम चरण में प्रकाश में आये विभिन्न पक्षों के प्रति सूक्ष्म विश्लेषण का आधार दिया। तीसरे चरण में स्ट्रीट चिल्ड्रेन और शिक्षा के अन्त:संबंध को समझने के लिए एक स्वयंसेवी संस्था में पढ़ने आने वाले बच्चों के साथ अन्त:क्रिया की गई। शिक्षा से जुड़ी इन बच्चों की अपेक्षाएँ, इनके सपने, दृष्टिकोण आदि को समझने के लिए साक्षात्कार, समूह चर्चा, अर्द्ध प्रक्षेपी गतिविधियों का उपयोग किया गया। प्रस्तुत लेख में उपरोक्त वृहत्तर शोधकार्य के निष्कर्षों के आलोक में स्ट्रीट चिल्ड्रेन से जुड़े विमर्शों – अवधारणा, परिवार से गली तक की सतता और असतता, सामाजिक सक्रियता और शैक्षिक अनुभवों को समझने का प्रयास किया गया है।

## स्ट्रीट चिल्ड्रेन : सम्प्रत्यात्मक विश्लेषण

स्ट्रीट चिल्ड्रेन से जुड़े शोधकार्यों में स्ट्रीट चिल्ड्रेन को परिभाषित करने के लिए यूनीसेफ की परिभाषा को आधार बनाया गया है। यूनीसेफ (1985, 1992) ने अपनी परिभाषा के अन्तर्गत तीन प्रमुख बिन्दुओं को महत्व दिया है-

- वे बच्चे जो गलियों में कार्य करते हैं, लेकिन अपने परिवार के साथ रहते हैं।
- वे बच्चे जिनका परिवार तो है, लेकिन उन्हें इससे आवश्यक मदद नहीं मिलती।
- वे बच्चे जो कार्यात्मक रूप से परिवार और अभिभावक के बिना रहते हैं।

यूनीसेफ की ही अवधारणा को आधार बनाकर स्ट्रीट चिल्ड्रेन पर आधारित अन्तरराष्ट्रीय अंत: एन.जी.ओ. कार्यक्रम (1986) ने इन्हें इस प्रकार से परिभाषित किया है-

*''एक स्ट्रीट चिल्ड्रेन वह लड़का या लड़की है जो अभी वयस्क नहीं हुआ है और जिसके लिए गली अपने वृहत्तर अर्थ में, जो परित्यक्त स्थान और गैर निवास योग्य स्थानों को भी शामिल करता है, ही आवास और जीविकोपार्जन का साधन है जो किसी भी प्रकार के वयस्क संरक्षण और सहयोग से वंचित है।'' (आप्तेकर, 1994 से उद्धृत)*

रिजनी और सैंडर (1987), लस्क (1989), और वेनीटेज (2011) ने अपने-अपने कार्यों में इस विमर्श को स्थान दिया है कि मात्रात्मक आँकड़ों में इस प्रकार के बच्चों की बढ़ती हुई संख्या और विविधता मानक परिभाषा की सीमा को रेखांकित करती है। इस प्रकार की परिभाषाओं का अतिविस्तृत दायरा और विविध व्याख्या की संभावना मात्रात्मक विश्लेषण को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करती है। यद्यपि शोधकार्यों में इन परिभाषाओं को

आवश्यकता अनुरूप संशोधित किया गया है। और उनमें नये आयाम भी जोड़े गये हैं। लेकिन परिभाषा को मूल गली में और गली से परे ही मुख्य आधार माना गया है। विसानो (1990) ने इन्हें परिभाषित करते हुए दो आयामों को ध्यान में रखा है– (क) इनके द्वारा गली में बिताया जाने वाला समय और (ख) जिम्मेदार वयस्क की उपस्थिति और अनुपस्थिति। इसी प्रकार कासग्रोव (1990) ने इन्हें परिभाषित करते हुए कहा है कि *'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' ऐसे बच्चे हैं जो 18 वर्ष की उम्र से कम आयुवर्ग के हैं, जिनका व्यवहार सामान्य और सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार जैसा नहीं होता है, जिनकी विकासात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार या परिवार जैसी किसी अन्य प्रकार के संस्था द्वारा नहीं होती है।''* इन परिभाषाओं में स्ट्रीट चिल्ड्रेन की अवधारणा को सार्वभौमिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन परिभाषाओं में प्रयुक्त आधारों पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि ये आधार संस्कृतिबद्ध हैं, न कि सार्वभौमिक। लस्क (1992) ने इस अवधारणा को पुन: एक नये वर्गीकरण के रूप में प्रस्तुत किया। इसके अन्तर्गत इन्होंने निम्न वर्ग बनाए – गली में रहने वाले परिवारों के बच्चे, बिना अभिभावक के बच्चे, परिवार में रहने वाले लेकिन गली में समय बिताने वाले बच्चे। आप्तेकर (1994) ने इन परिभाषाओं को चुनौती दी और स्ट्रीट चिल्ड्रेन की अवधारणा की व्याख्या एक प्रक्रिया के रूप में की। यह प्रक्रिया गली में प्रवेश और समय बिताने के साथ प्रारम्भ होती है और गली की संस्कृति में पूरी तरह से रम जाने पर समाप्त होती है। ये बच्चे गली में ही ज्यादातर समय बिताते हैं और गली की गतिविधियों में संलग्न रहते हैं। इनका जीवनयापन गली की गतिविधियों में संलग्नता पर आधारित है। इन्हें किसी भी प्रकार का संरक्षण और सुरक्षा नहीं मिलती है।

पूर्व में हुए शोधकार्य में, जिन बच्चों को 'परित्यक्त बच्चों' के रूप में देखा गया था, यह पाया गया कि ये बच्चे परित्यक्त बच्चे न होकर ऐसे परिवार से संबंधित हैं जहाँ जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को 'कमाने' की जरूरत होती है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन बच्चों को जो कीमत चुकानी पड़ती है वह ही इनके अनुभवों को सामान्य और स्वीकार्य बचपन की अवधारणा से भिन्न बना देती है (रिजनी और बटलर, 2003)।

ज्यादातर शोध कार्यों में 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' की अवधारणा को परिभाषित करते हुए वस्तुनिष्ठता की कीमत पर उनके जीवन्त, निजी और वैयक्तिक अनुभवों को किनारे कर दिया गया हैं। बजाय अन्त:क्रियात्मक विश्लेषण करने के, कार्यकारण प्रभाव के रूप में व्याख्या करते हुए, गरीबी, पारिवारिक जीवन की कठिनाइयों एवं जनसंख्या की अधिकता

का परिणाम बता दिया गया है। जो कार्य इस स्तर से आगे बढ़े हैं, उन्होंने इन बच्चों के वर्गीकरण का प्रयास किया है। वर्गीकरण और परिभाषाओं के अन्तर्गत इन बच्चों के, इनके परिवार से संबंध के स्तर को और गली से इनके संबंध की प्रकृति को आधार बनाया गया। इन्हें एक 'व्यक्ति' विशेष के रूप में न देखकर एक विशेषण विशेष से जोड़कर देखा गया है। इनके 'समांगता' की मान्यता हमें उनके अनुभवों के सूक्ष्म विश्लेषण से वंचित कर देती है। कुछ अध्ययनों में इन्हें ऐसे समूह के रूप में देखा गया है जिनकी मूल आवश्यकताओं, जैसे भोजन, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य से वंचित कर दिया गया है। विगत कुछ दशकों में इन बच्चों को परिभाषित करने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। मोरा (2002) का मानना है कि उन्हें 'अपराधी', 'भगोड़ा' या 'भुक्तभोगी' के रूप में देखने के बजाय एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहिए जो नाना प्रकार के वातावरण में सक्रियता के साथ सहभागिता करते हैं। इसी प्रकार रिजनी और बटलर (2003) का मानना है कि गली की गतिविधियों में प्रथम कदम के साथ ही ये बच्चे गली की संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं, और इसके अन्तर्गत ही उनका समाजीकरण होने लगता है। इस समाजीकरण की प्रक्रिया के नकारात्मक पक्ष को ही ज़्यादातर शोध कार्यों में उभारा गया है। वे भी गलियों में रहते हुए समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान व्यक्तित्व का विकास करते हैं, सीखते हैं, चुनौतियों का सामना करते हैं, और दायित्व स्वीकारते हैं। इन बच्चों के लिए गली जीवनानुभवों का महत्वपूर्ण हिस्सा है। लेकिन 'गली' को वातावरण तक ही रखकर नहीं समझा जा सकता है। एनन्यू (2003) ने अपने शोध कार्य द्वारा यह बताया कि इन बच्चों को हम मूल्यविहीन और असामाजिक कह देते हैं, जबकि इनमें भी 'आत्म सम्मान' की इच्छा और सामाजिक संवेदना होती है। इसी प्रकार मसाबा (2004) ने बताया कि परिवारजन्य परिस्थितियों के कारण लड़कियाँ भी 'गली' के जीवन का हिस्सा बनती हैं और वेश्यावृत्ति में संलग्न हो जाती हैं। इसके बावजूद भी वे एक समूह के रूप में रहती हैं और एक दूसरे की देख-रेख करती हैं, और समूह द्वारा दी गई जिम्मेदारी को दायित्व के साथ स्वीकारती हैं। स्ट्रीट चिल्ड्रेन की संज्ञा इन्हें केवल गली में भटकने वाले बच्चों के रूप में बाँध देती है और जीवन के अन्य पक्षों की उपेक्षा कर देती है। (मोरा, 2002)।

स्पष्ट है कि स्ट्रीट चिल्ड्रेन को परिभाषित करने की तीन धाराएँ रही हैं– प्रथम के अन्तर्गत सामाजिक-जनांकीय आधारों पर गली में इनकी मौजूदगी को इनकी परिभाषा का आधार बनाया गया है। दूसरे प्रकार के प्रयास में परिवार और अन्य सामाजिक एजेंसियों से इनके बिलगाव की प्रक्रिया को आधार बनाया गया है। इस प्रकार के वे प्रयास हैं जो काहल के वर्षों में हुए हैं, जिनके अन्तर्गत सबसे पहले अवधारणा विशेष पर ही प्रश्न चिह्न लगाते हुए इसे 'सामाजिक सांस्कृतिक कारक निर्मित सम्प्रत्यय'

माना गया है, और यह सवाल पूछा गया कि यह परिभाषा किसके लिए है? किसने बनाया है? और यह किसके पक्ष में कार्य कर रही है? इस धारा के अन्तर्गत आने वाले विद्वानों का मानना है कि स्ट्रीट चिल्ड्रेन की अवधारणा के अन्तर्गत इन बच्चों को आम बच्चों, वयस्कों, परिवार और स्कूल जैसी अन्य सामाजिक संस्थाओं से विलग रूप में देखा जाता है। यह प्रवृत्ति इनके सामाजिक बहिष्करण को वैधता प्रदान करता है। वृहत्तर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रिया–जन्य अपवंचन, राज्य द्वारा मूलभूत सुविधाओं को प्रदान करने की असफलता एवं परिवार द्वारा जीवन जीने की मूलभूत चुनौतियों से दैनिक सामना को विश्लेषण के दायरे से अलग कर देने पर उपरोक्त प्रकार के एकांगी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

## सतता और असतता का द्वन्द्व : स्ट्रीट और परिवार

गली की गतिविधियों में संलग्न जो बच्चे प्रस्तुत शोधकार्य का अंग बने उनकी पृष्ठभूमि से जुड़ी विविधता इस अवधारणा की जटिलता और इन बच्चों की विषमांगता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस अध्ययन में शामिल बच्चों की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करने पर पता चला कि इस समूह में ऐसे बच्चे हैं, जो गलियों में कबाड़ बीनने का कार्य करते हैं और गलियों में ही स्वतंत्र रूप से रहते हैं। ये झुग्गियों में अपने परिवार या मित्रों के साथ समूह में रहते हैं और विद्यालय नहीं जाते हैं। ऐसे बच्चे भी हैं जो बाजार क्षेत्र की असंगठित गतिविधियों में लगे हुए हैं। ये बच्चे अपने अभिभावकों की मदद कर रहे हैं। वे विद्यालय जाते हैं लेकिन विद्यालय के बाद का सारा समय गलियों में गुजारते हैं। ऐसे बच्चे भी हैं जो गली में किसी आर्थिक गतिविधि में संलग्न तो नहीं हैं, लेकिन अपने दिन का ज्यादातर हिस्सा वे गलियों में ही गुजारते हैं। ये स्कूल नहीं जाते। ऐसे ज्यादातर बच्चे प्रवासी मजदूरों के बच्चे हैं। ऐसे भी बच्चे हैं जिनका परिवार समाज के निम्नतम तबके में आता है, जो स्कूल में नामांकित तो हैं लेकिन स्कूल जाने के बजाय भीख माँगने, ट्रैफिक सिग्नल पर गुब्बारे बेचने और फूल बेचने जैसी गतिविधियों में संलग्न रहते हैं। ज्यादातर बच्चे असंगठित क्षेत्र में अनिश्चितता वाले रोज़गार में लगे हुए हैं। कुछ अपने पिता और परिवार के अन्य सदस्यों की आर्थिक गतिविधियों में मदद करते हैं। कुछ एक मौसम और अवसर के अनुरूप आर्थिक कार्य करते हैं। पहले प्रकार के केस में कार्य करना बच्चे की बाध्यता है। दूसरे और तीसरे प्रकार के केस में बच्चे का चुनाव और इच्छा की भूमिका भी रहती है।

स्पष्ट है कि स्ट्रीट चिल्ड्रेन की मनोसामाजिक दुनिया को समझने के प्रयास हममें इन बच्चों से प्रारम्भ न करके, इस विश्लेषण के दृष्टि को उलट कर देखने की जरूरत है। वृहत्तर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत समाज का वर्ग

विशेषज्ञ अपवंचित हो जाता है। इस अपवंचित वर्ग का हाशियाकरण और समाजिक बहिष्करण प्रारम्भ हो जाता है। बहिष्करण और हाशियाकरण की ये प्रक्रियाएँ अपने अग्रगामी प्रभाव के रूप में इस तबके के बच्चों को घर और स्कूल के दायरे से खींचकर सड़कों और गलियों तक ले आती हैं। वंचित परिवेश में विकसित होने के कारण ये बच्चे स्वयं ही मुख्यधारा से कट जाते हैं। इनके परिवेश की चुनौतियाँ और दुरूह दशाएँ जीवनयापन को और भी कठिन बना देती हैं। इन बच्चों को एक विलग और निरपेक्ष इकाई के रूप में देखने के बजाय इन्हें निम्नतम सामाजिक आर्थिक वर्ग के परिवारों से आने वाले बच्चों के वृहद्तर वर्ग के रूप में देखना चाहिए।

इस शोध कार्य के सभी प्रतिभागी बच्चे निम्नतम सामाजिक आर्थिक वर्ग वाले परिवारों से आते हैं। परिवार का आकार बड़ा होता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को काम करना जरूरी हो जाता है। ज्यादातर बच्चों के पिता शराब आदि का नशा करते हैं। परिवार का माहौल तनावपूर्ण है। इनके परिवारों में घरेलू हिंसा आम बात है। ज़्यादातर बच्चों का परिवार कर्ज़ में डूबा हुआ है। इस प्रकार की पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चों के लिए 'घर' से 'गली' तक का सफर एक घटना न होकर एक प्रक्रिया है। तथाकथित रूप से बाज़ार की गलियों में इस प्रकार के बच्चों की मौजूदगी को 'हैरानी' और चर्चा का विषय मान लिया जाता है। इस विमर्श का दूसरा पक्ष यह है कि यह स्थान अपनी प्रकृति के साम्य में इनकी मौजूदगी को अपरिहार्य बना देते हैं। पहले तो इस प्रकार के क्षेत्र में ये बच्चे धनार्जन की छोटी गतिविधियों में आसानी से व्यस्त हो जाते हैं। इस स्थान के परे इस प्रकार के अवसर प्राप्त करना इनके लिए कठिन हो जाता है। इस प्रकार के कार्यों के लिए इन्हें किसी खास प्रकार के 'कौशल' की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन क्षेत्रों का अपना 'आकर्षण' होता है जो इन बच्चों को बाँधे रखता है। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि इस प्रकार के स्थानों पर ये किसी भी प्रकार के 'सर्विलांस' (निगरानी) से मुक्त होते हैं।

इस कार्य में यह पाया गया कि स्थान की इकाई के रूप में इन बच्चों के लिए घर और गली दो ध्रुवों पर स्थिर न होकर सतता के रूप में है। प्रारम्भ में वे घर पर रहकर घरेलू काम करते हैं और छोटे भाई बहनों की देखभाल करते हैं। जब छोटे भाई बहन में से कोई इस भूमिका को स्वीकारता है तो वे शेष बच रहे समय को गली में गुजारने लगते हैं। धीरे-धीरे वे गली की गतिविधियों में सहभागिता करते हुए गली में ही पूर्ण रूप से सक्रिय हो जाते हैं। इस सक्रियता के साथ-साथ वे अपने परिवार से भी जुड़े हुए हैं। वे एक वयस्क के रूप में परिवार की जिम्मेदारियों में हाथ बँटाने वाली भूमिका को स्वीकार

कर रहे हैं। अधिकांश बच्चों ने बताया कि वे जो पैसा कमाते हैं, उन्हें वे अपनी माँ को देते हैं। गली के कार्य से लौटने के बाद परिवार की परेशानियाँ उनके लिए भी चिन्ता का विषय होती हैं। इसी प्रकार जो बच्चे प्रवास करके अन्य राज्यों से आये हैं, उनका मूल स्थान उनके अचेतन का अविभाज्य हिस्सा है। साक्षात्कार के दौरान बहुधा सभी ने अभिव्यक्त किया कि वे लौटकर गाँव वापस जाना चाहते हैं। जो बच्चे प्रवास करके अन्य राज्यों से आये हैं, उनमें घर वापस जाने की इच्छा है–

*'जब कर्ज़ चुका लेने के लिये पैसे कमा लूँगा तो वापस घर चला जाऊँगा।'*

पूर्व में हुए शोध कार्यों में इन बच्चों को 'गली के अभिशापित' बच्चों के रूप में दिखाया गया है। गली में जब इन बच्चों के अनुभवों की पड़ताल की गई तो उभरकर सामने आया कि ये बच्चे उन 'गलियों' को उतने नकारात्मक रूप से नहीं देखते जितना कि इन गलियों को दिखाया गया है। यह स्थान उनके लिए वैसे ही बन गया है जैसे किसी के लिए अपना घर हो। इन गलियों में, 'आम' बच्चों की तरह वे घूमते हैं, खेलते हैं, कार्य करते हैं। गली इनके जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। वे इसके प्रति पूरी तरह से अनुकूलित हो गये हैं। गली की संस्कृति की उन्हें समझ है और उनका निर्णय इसी समझ के आधार पर होता है। गली में मौजूदगी को वे अपनी मजबूरी के बजाय अपनी 'पहचान' और 'स्वायत्तता' से जोड़कर देखते हैं। इस प्रकार के तथ्य एकाकी बचपन की पाश्चात्य अवधारणा के बजाय 'बहुलविधि रूप' के बचपन की मौजूदगी को पुष्ट करते हैं।

इन बच्चों के लिए इनके मित्र और हमउम्र साथी महत्वपूर्ण होते हैं। एक रूप में, यह समूह इनके लिए 'सरोगेट फेमिली' के रूप में कार्य करता है। इस समूह में घनिष्ठता का पता इसी बात से चलता है कि मित्रों की बात करने पर एक लड़का कहता है कि–

*'मेरे बहुत सारे दोस्त हैं, आप कहोगे तो मैं सबको बुला दूँगा।'*

इन बच्चों ने बताया कि इन मित्रों के साथ मिलकर ये अपनी दैनिक गतिविधि संचालित करते हैं। ये इनके लिए प्रतिद्वंद्वी होते हैं, जो इनके 'अवसरों' को छीनते हैं। वहीं दूसरी ओर, ये इनके मित्र भी होते हैं, जो इन्हें अन्य मौकों पर नए 'अवसरों' की जानकारी देते हैं। जिस दिन बाज़ार बंद रहते हैं, उस दिन को ये बच्चे अपने पूरे समूह के साथ अवकाश के रूप में मनाते हैं। ये विशेष रूप से तैयार होते हैं, घूमने जाते हैं, बचत के रूप में इकट्ठे किए गये पैसों से खरीददारी करते हैं।

## सामाजिक दायरे में संस्थापित, सक्रिय और सचेत स्ट्रीट चिल्ड्रेन

विकास की जिस प्रक्रिया को हम 'सामान्य विकास' की दृष्टि से देखते हैं उसके लिए

विद्यालय जैसी 'औपचारिक संस्थाओं' के अन्तर्गत 'सामाजिक कौशलों' का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रकारान्तर से यह प्रशिक्षण समाजीकरण को दिशा देता है। 'सामान्य विकास' की यह धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि स्कूल हमें तटस्थ और निरपेक्ष ज्ञान प्रदान करके हमारे चिन्तन के उपकरणों को धार प्रदान करता है। इस आम धारणा को जब हम आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि स्कूल भी सत्ता के पक्ष में कार्य करने वाली अन्य सामाजिक एजेंसियों की ही तरह 'खास लोगों' द्वारा मान्यता प्राप्त 'वैध ज्ञान' को बढ़ावा देता है। विडम्बना यह है कि वह प्रत्येक प्रकार का ज्ञान, जो इस औपचारिक प्रकार के साँचे में फिट नहीं बैठता, उसे ज्ञान की श्रेणी में ही नहीं रखते और इस प्रकार के ज्ञान को न रखने वाले लोगों को हाशिए पर ढकेल दिया जाता है। 'वैध ज्ञान' से वंचित व्यक्ति 'असामान्य' माना जाता है, और उसकी इस असामान्यता और हाशियाकरण को वैधता प्रदान करने के लिए 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' जैसी संज्ञाएँ गढ़ दी जाती हैं।

यद्यपि ये बच्चे औपचारिक रूप से स्कूल में दिए जाने वाले 'वैध' प्रकार के ज्ञान से वंचित रह जाते हैं, लेकिन वे सामाजिक दायरे में दिन-प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं के चशमदीद और वैध गवाह होते हैं। 'गली' में होने वाले जीवन्त अनुभवों के आधार पर उन्होंने सामाजिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं के लिए एक स्पष्ट अवधारणा बना ली है। विभिन्न एजेंसियों और संस्थाओं से प्रत्यक्ष अन्त:क्रिया के वे सक्रिय अवलोकनकर्त्ता हैं और तद्जनित प्रभाव का अन्त:करण भी किया है। 'स्ट्रीट चिल्ड्रेन' आर्थिक गतिविधि प्रधान क्षेत्र में अपने दिन का अधिकांश हिस्सा गुजारता है। ज्यादातर बच्चे प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक गतिविधियों में संलग्न भी थे। इस कार्य संलग्नता से उन्होंने अपनी कार्यशैली विकसित की है। औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत जिन योग्यताओं को 'व्यावसायिक दक्षता', 'निर्णय लेने की क्षमता', 'प्रबन्धकीय योग्यता' आदि अकादमिक शब्दों को वे समझते हैं और औपचारिक शिक्षा द्वारा इन गुणों के विकास का प्रयास करते हैं, इन बच्चों में बिना किसी 'प्रशिक्षण' के ऐसी क्षमताएँ विकसित हैं। एक योग्य प्रबंधक की तरह, ये बिना किसी सैद्धान्तिक ज्ञान के विभिन्न सम्भावनाओं में से सर्वोत्तम सम्भावना का चुनाव करने में सक्षम हैं। एकत्रित 'कूड़े' और 'कबाड़' को किस प्रकार से वर्गीकृत करना है? किस प्रकार बेचना है? और किस प्रकार से व्यवसाय में 'फायदे का सौदा' करना है? यह सब इन्हें पता है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान जिसे 'दैनिक संज्ञान' या 'अभ्यास का संज्ञान' कहा जाता है, उसका प्रकट उदाहरण इन बच्चों का व्यवहार है। क्रय-विक्रय, लाभ-हानि की गणना, 'कमेटी' जैसी लघु बचत की स्थानीय संस्थाओं में

निवेश, बचत को माता के पास जमा करना, केवल इनकी गणितीय योग्यता को ही नहीं सिद्ध करता है, बल्कि इनके कार्य करने की 'उद्यमिता-शैली' को बताता है।

अपने दिन-प्रतिदिन के कार्यक्रम के दौरान 'कानून का नियमन और निष्पादन' करने वाली एजेंसी पुलिस को लेकर इन्होंने जो अवधारणा बनाई है 4,वह आदर्श और मानक 'ज्ञान' के विपरीत 'यथार्थ' ज्ञान का ज्वलंत उदाहरण है। इन बच्चों का मानना है कि पुलिस केवल अमीरों की मदद करने के लिए है। अधिकांश ने अपना अनुभव बाँटते हुए बताया कि पुलिस बिना कारण के इन बच्चों को संदेह की दृष्टि से देखती है और परेशान करती है। पुलिस की इनके प्रति इस प्रकार की मान्यता 'नकारात्मक छवि' को ही पुनर्वलित करती है—

*'कोई भी चोरी हो, सबसे पहले कबाड़ वाले को ही पकड़ते हैं।'*

व्यवस्था की विद्रूपता के आँखों देखे हाल को बयान करते हुए ही एक लड़के ने कहा कि *'पुलिस वाले पैसे लेकर हमें छोड़ देते हैं। इस गली में रहने के लिए हमें उन्हें पैसा देना पड़ता है।'*

'हमें पीटते  हैं', 'घूस लेते हैं', 'झुग्गी गिराने की धमकी देते हैं', जैसे वाक्यांश सभी बच्चों के अनुभव जगत का हिस्सा थे। पुलिसिया तंत्र की छिपी हुई कारगुजारी का इससे जीवन्त उदाहरण क्या हो सकता है —

*'मैं पुलिस बनना चाहता हूँ, क्योंकि पुलिस वाले ज्यादा कमाते हैं।'*

समाज में दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं ने इनकी समझ को किस प्रकार ढाला है, इसका परिचय इन बच्चों के निम्नलिखित कथनों में स्पष्ट रूप से मिलता है

*'मेरे पड़ोसी के पास पैसा है। वह हमसे झगड़ा करता है लेकिन पुलिस उसे कुछ भी नहीं कहती। क्योंकि उसके पास पैसा है।'*

*'मुझे पुलिसवालों की ड्रेस तो पसन्द है, लेकिन वे नहीं पसन्द हैं। वे चाय तो पी लेते हैं, लेकिन पैसे नहीं देते।'*

इन कथनों या विचारों को 'अपरिपक्व' कहकर टाला नहीं जा सकता है। यह विचार उन बच्चों के हैं, जो दैनिक रूप से इस एजेंसी के व्यवहार का अवलोकन कर रहे हैं और अन्त:क्रिया कर रहे हैं।

समसामयिक घटनाओं और हलचलों के प्रति इन बच्चों की जागरुकता और सचेतनता का पता इसी बात से चलता है कि शोध कार्य में सम्मिलित सभी बच्चों ने 'भ्रष्टाचार

विरोधी' आन्दोलन की जानकारी को शोधकर्त्ता के साथ साझा किया। इस चर्चा को आधार बनाकर जब इनसे नेताओं के बारे में पूछा गया तो उन बच्चों ने बताया कि –

*'जिससे पुलिस भी डरती है, वे नेता होते हैं।'*
*'नेता बोट के समय हर चीज का वादा करते हैं, लेकिन फिर पूरा नहीं करते।'*
*'इन लोगों को देखकर खुशी नहीं होती, क्योंकि ये अपने लिए कमाते हैं।'*

इन बच्चों के अनुसार महात्मा गांधी सबसे बड़े नेता थे। इसी कारण इनकी फोटो पैसे पर और हर जगह छपी रहती है। अन्य बड़े नेता मनमोहन सिंह, सोनिया गांधी और राहुल गांधी हैं। कुछ बच्चों ने यह भी बताया कि अन्ना हज़ारे सब नेताओं से हटकर हैं, क्योंकि अपने लिए पैसा नहीं कमाते।

भारतीय सामाजिक संरचना के मूल में निहित विशेषताओं जैसे लिंग, धर्म और जाति के सन्दर्भ में इन बच्चों की स्पष्ट अवधारणाएँ और विश्वास हैं। जेंडर के संदर्भ में इस शोध कार्य में एक विशिष्ट स्थिति देखने को मिली। निम्न सामाजिक आर्थिक वर्ग के लिए जेंडर रोल किस प्रकार से कम महत्वपूर्ण हो जाता है, इसका प्रमाण इन बच्चों की बातों से चलता है। लड़का और लड़की में अन्तर के आधार पर चर्चा के दौरान सभी (चाहे वह लड़का हो या लड़की) ने विस्तार से विचार व्यक्ति किया। इस भेद का आधार जेंडर रोल में अन्तर को बताया–

*'लड़कियाँ और औरतें खाना बनाती हैं, घर का काम करती हैं।'*

वहीं दूसरी ओर इन बच्चों ने यह भी बताया कि वे दैनिक जीवन में घर का काम करते हैं – अपने छोटे भाई बहनों को सम्हालना, घर का खान बनाना आदि। इस प्रकार का समंक इस वर्ग के बच्चों के सन्दर्भ में जेंडर की द्वैधता को प्रमाणित करता है।

सभी बच्चे अपनी धार्मिक पहचान को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने धर्म से जुड़े संस्कारों और परम्पराओं को अपनी धार्मिक पहचान के स्रोत के रूप में बताया। इन बच्च्चों की सचेतनता और संवेदनशीलता का स्तर रुढ़िबद्धता के रूप में नहीं है। 'धर्म' का उपयोग किस प्रकार करते हैं, यह बात इनके साक्षात्कार से पता चलता है। इन सभी बच्चों को मालूम है 'मंगलवार', 'शनिवार', और 'वृहस्पतिवार', इनके लिए महत्वपूर्ण दिन है। किस प्रकार से 'शनि' महाराज के नाम पर हम शनिवार को अर्थार्जन करते हैं। इन्हें पता है कि किस दिन लंगर के लिए कहाँ जाना है। इसी प्रकार ये आसपास के मज़ार और वहाँ आने वाले श्रद्धालुओं की भीड़ वाले दिन का भी पूरा ध्यान रखते हैं।

जो बच्चे कुछ समय पूर्व ही दिल्ली प्रवास करके आये हैं, वे जातीय पहचान,

व्यक्तित्व के मुख्यपक्ष के रूप में, के प्रति सचेत हैं एवं इनसे जुड़ी हुई रूढ़ियों को लेकर संवेदनशील हैं–

*''नहीं सर हम क्षत्रिय हैं, हम इन लोगों से बड़े हैं। गाँव में हम इनका छुआ नहीं खाते।''*

लेकिन संवेदनशीलता का यह स्तर उन बच्चों में न के बराबर है जो प्रथम पीढ़ी प्रवासियों के बच्चे हैं या वे मूलतः दिल्ली में ही पैदा हुए और पले-बढ़े हैं।

## 'बड़े आदमी' का मिथक, शिक्षा और स्ट्रीट चिल्ड्रेन

शिक्षा का अधिकार कानून के लागू होने और सरकारी और शिक्षा नीतियों द्वारा 'अधिगमकर्त्ता केन्द्रित शिक्षा की वचनबद्धता को बार-बार दोहराए जाने के बावजूद इन बच्चों का विद्यालय की सीमा के बाहर होना इन सभी 'प्रयासों' की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाता है। इस शोध कार्य में किसी 'नीतिगत' स्तर पर विश्लेषण को न ले जाकर इन बच्चों के शैक्षिक अनुभवों की पड़ताल की गई है। इस शोध के सभी सहभागियों ने शिक्षा को धनार्जन की योग्यता को प्रदान करने वाले साधन तद्नुरूप सामाजिक गतिशीलता के प्रेरक के रूप में देखा है। इन बच्चों के लिए शिक्षा की भूमिका ऐसे साधन के रूप में है जिससे ये ज्यादा पैसा कमा सकते हैं। फलस्वरूप समाज में इनकी स्थिति मज़बूत होगी-

*''मैं ज़्यादा पढ़ूँगा, तो ज़्यादा कमाऊँगा।''*

*''पढ़ लेने पर मैं लेबर के बजाय इंजीनियर बनूँगा, टोपी लगाऊँगा और लोगों से काम करवाऊँगा।''*

इनकी यह धारणा हमारे समाज के उस तथाकथित सामाजिक स्वीकार्यता का प्रत्यावर्तन है जहाँ पर 'पढ़े-लिखे' व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से 'श्रेष्ठ' स्वीकार कर लिया जाता है। इस श्रेष्ठता का पैमाना सामाजिक संस्तर में उनकी स्थिति से तय होता है। जिस 'असामान्यता' की तख्ती को इन बच्चों से नत्थी कर दिया गया, उससे मुक्ति पाने के लिए वह समाज के द्वारा निर्धारित सामान्यता के मानक शिक्षा को अपनाना चाह रहे हैं। इस तर्क को ही पुष्ट करते हुए सभी प्रतिभागी बच्चों ने भविष्य के प्रति अपनी संभावना को साझा करते हुए बताया कि वे 'बड़ा आदमी' बनना चाहते हैं। इस साध्य के लिए वे शिक्षा को साधन के रूप में देखते हैं। इन बच्चों के 'बड़ा आदमी' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके पास बहुत सारा पैसा होता है, ताकत होती है, वह सफल होता है और सम्मान पाता है। इस छवि के अन्तर्गत इंजीनियर, डाक्टर, ठेकेदार, पायलट, पुलिस और सेना के जवान आते हैं। इन बच्चों का मानना है कि बड़ा आदमी बनकर वे सफल बन सकते हैं, उन्हें सम्मान मिल सकता है।

*''स्कूल जाने से दिमाग बढ़ता है। इससे लोग हमारी बात मानेंगे।''*

*''पढ़ लिख लेने पर हम अंग्रेजी जान जाएंगे, कंप्यूटर सीख लेंगे।''*

*''पढ़ लिखकर जब बड़ा आदमी बन जाऊँगा तब लोग अपने घर बुलाएँगे और माला पहनाएँगे।''*

बच्चों की ये प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट प्रमाण हैं कि 'सत्ता' की धारणा इनके अवचेतन में गहराई से जमी हुई है। 'सत्ता' और सत्ता हीनता के बीच की दूरी को शिक्षा के सहारे पार करना चाहते हैं। इन बच्चों के बड़े आदमी की छवि में वे ही 'सत्ताधारी' हैं, जिनके शक्ति के अभ्यास को वे दिन-प्रतिदिन देखते हैं। शिक्षा को स्कूली जीवन के समान्तर देखते हुए स्कूल जाने के सांकेतिक चिह्न इन बच्चों के स्कूल से जुड़े अरमानों और सपनों में व्यक्त हुए-

*''जब मैं स्कूल के पास कूड़ा बीनने जाता हूँ तो सोचता हूँ कि काश में भी स्कूल की ड्रेस पहनकर स्कूल जा सकता।''*

*''जब मैं स्कूल जाऊँगा तो स्कूल के कपड़े पहनूँगा और बैग और टिफिन ले जाऊँगा।''*

जहाँ एक ओर ये अरमान हैं तो वहीं इन बच्चों ने स्कूलिंग की प्रचलित परिपाटियों को भी सहज रूप से स्वीकार कर लिया है। इनमें अधिकांश बच्चों ने स्कूल में दी जाने वाली सज़ा को वैध बताया। इसके पीछे इनका तर्क यह था कि यह सज़ा गलती करने के बदले दी जाती है और गलती करने पर सज़ा तो मिलनी ही चाहिए। इस प्रश्न की गहराई में उतरने पर एक नये विशेषण की जानकारी हुई, वह था- 'गंदा बच्चा'।

*''गंदे बच्चों को सही रास्ते पर लाने के लिए सज़ा होती है।''*

इनके अनुसार 'गंदा बच्चा' वह होता है जिसकी शैक्षिक उपलब्धि कम होती है, जो दूसरों को पीटता है, जो स्कूल से भाग जाता है और जो गुटखा खाता है, जो ऐसे काम नहीं करता वह अच्छा बच्चा है। इन बच्चों ने स्वयं को 'अच्छा' के श्रेणी में रखा।

शैक्षिक अनुभव की दृष्टि से देखें तो प्रथम वर्ग में वे बच्चे आते हैं जो कभी भी स्कूल नहीं गये। ये वे बच्चे हैं, जो समय से पूर्व ही वयस्क के रूप में परिवार के दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं। इनके लिए जीवन जीने की आधारभूत सुविधाओं का प्रश्न ही इतना महत्वपूर्ण है कि अन्य प्रश्नों की इनके जीवन में जगह ही नहीं है। इन बच्चों में कई एक ऐसे हैं जिनके अभिभावकों ने यहीं ये निर्णय लिया कि ये स्कूल नहीं जाएंगे। अभिभावकों के इस निर्णय के मूल में उनकी यह समझ निहित है कि यह बच्चे

अतिरिक्त आय सर्जक हैं। दूसरे यह कि वे शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता के उत्प्रेरक के रूप में नहीं स्वीकारते।

*''स्कूल जाने का कोई फायदा नहीं है। नौकरी तो केवल पैसे से ही मिलती है।''*

दूसरे वर्ग में वे बच्चे आते हैं जो प्राइमरी कक्षाओं तक स्कूल गये हैं लेकिन अब वे स्कूल नहीं जा रहे हैं। इस वर्ग में ज्यादातर वे बच्चे आते हैं जो अपने गृहराज्य में तो स्कूल जाते थे, लेकिन अब वे स्कूल नहीं जा रहे हैं। जब वे दिल्ली आये तो भी उनके अभिभावकों ने निकटवर्ती सरकारी स्कूलों में उन्हें प्रवेश दिलाने का प्रयास किया, लेकिन उन्हें प्रवेश नहीं मिल सका। ये बच्चे ऐसे हैं जिनके अभिभावक बच्चों को स्कूल भेजना चाहते हैं और जो स्वयं भी स्कूल जाना तो चाहते हैं लेकिन उन्हें स्कूल में प्रवेश नहीं मिल पा रहा है। स्वाभाविक है कि जब ये बच्चे स्कूल की मशीनरी द्वारा ही स्कूल के बाहर कर दिए गए हैं तो ये अपना दिन गलियों पर ही गुजारेंगे। प्रवेश न देने के कारणों की पड़ताल करने पर जो कारण इन बच्चों के अनुभवों से पता चले उनमें उम्र का अधिक होना, कुछ प्रमाणपत्रों का न होना, सत्र के बीच में आना और लगातार निवास में परिवर्तन करना, जैसे कारण उभरकर सामने आये। लेकिन कुछ ऐसे भी बच्चे हैं जो विद्यालय जाना ही नहीं चाहते। इन बच्चों को विद्यालयी अनुभव कटुकर हैं और इनके मन में यह स्थायी भाव बैठ चुका है कि शिक्षा की इनके जीवन में कोई भूमिका नहीं है।

**तीसरे वर्ग** में वे बच्चे आते हैं जो स्कूल तो जाते हैं लेकिन स्कूल से आने के बाद गली की गतिविधियों में व्यस्त रहते हैं। इन बच्चों की दिनचर्या में स्कूल जाना तो शामिल है लेकिन स्कूल से लौटने के बाद वे अन्य गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं। वे स्कूल में ही अपने गृहकार्य आदि पूरा कर लेते हैं। इन बच्चों के लिए स्कूल का आकर्षण एक ऐसे स्थान के रूप में है जहाँ जाकर वे अपने दोस्तों के साथ खेल सकते हैं। इन बच्चों ने स्कूली अनुभव किसी भी 'सरकारी' स्कूल की कार्यशैली का वर्णन ही है।

जिन बच्चों ने विद्यालय छोड़ा है, उनके इस निर्णय का श्रेय उनके अभिभावकों को जाता है। ज़्यादातर केस में यह पाया गया है कि पिता या चाचा ने स्कूल से निकालकर उन्हें किसी काम से लगा दिया। इन बच्चों के इन अभिभावकों ने इन तक यह संदेश पहुँचाया कि पढ़ने लिखने का कमाने से कोई संबंध नहीं है। इसीलिए स्कूल में समय बर्बाद करने के बजाय काम में लग जाना बेहतर है। कुछ बच्चों ने इस धारणा को दृढ़ कर लिया है और वे शिक्षा की भूमिका, जीवन के किसी भी भूमिका को स्वीकार नहीं करते हैं। लेकिन ज़्यादातर केस में यह पाया गया कि ये बच्चे स्वयं की शिक्षा से 'अपवंचन'

को भाग्य का परिणाम मानते हैं और अपने छोटे भाई–बहनों को शिक्षा दिलाने के लिए प्रयासरत हैं।

जब इन बच्चों की स्कूल से अपेक्षा और स्कूली अनुभवों को एक दूसरे के समान्तर रखकर देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि जिस शिक्षा को हम तमाम गुलाबी उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन मानते हैं, वह इनके बहिष्करण को प्रेरित ही कर रही है।

इस शोध कार्य में यह पता चला कि इन बच्चों की शिक्षा की राज्य की 'नैतिक' ज़िम्मेदारी को स्वयं सेवी संगठन साझा करते हुए अपनी 'नैतिक' जिम्मेदारी मानकर संचालित कर रहे हैं। दिल्ली के जिन विभिन्न क्षेत्रों से हमने इन बच्चों को चुना, प्रत्येक बच्चे के शैक्षिक अनुभव किसी न किसी 'संगठन' से जुड़े हुए हैं। इन संगठनों का शिक्षा को लेकर जो नज़रिया है, वह इन बच्चों को 'साक्षर' बनाने तक सीमित है। कुछ एक संस्थाएं इन्हें मुख्यधारा की स्कूलिंग में लाने के लिए प्रयासरत हैं। यद्यपि यह सभी प्रयास सराहनीय हैं। लेकिन इन सभी प्रयासों का उद्देश्य प्रचलित स्कूल की मान्यता के अनुरूप इन्हें प्रशिक्षित करने का है। स्वयं सेवी संगठनों के प्रयास इन बच्चों को विशिष्ठ अनुभवों को संज्ञान में लिए बिना प्रचलित पैमाने पर इनका मूल्यांकन करते हैं और इनकी सफलता की संभावना को नकारात्मक रूप से प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्षत: इन बच्चों के लिए कोई भी सुधारात्मक प्रयास इनके प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखकर नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार पूर्व में हुए शोध कार्यों में इनकी छवि को नकारात्मक रूप में अतिरंजित किया गया और दया भावना के साथ सहयोग का प्रयास हुआ, उससे ये बच्चे समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के बजाय और भी कटते चले जाते हैं। तद्नुभूति और तादात्म्य के साथ इनकी ओर बढ़ने पर यह भी अपनी ऊर्जा सीखने की अपनी ललक के साथ आगे आएँगे। संज्ञानात्मक क्षमता की दृष्टि से ये बच्चे उतने ही क्षमतावान हैं जितने की अन्य सामान्य बच्चे। शिक्षा की प्रक्रिया में मुख्यधारा में लाने के लिए हमें इनके विकासात्मक संदर्भ को ध्यान में रखकर उनके अनुरूप 'त्वरक' कार्यक्रमों का निर्माण करना होगा। जो स्वयंसेवी संस्थाएँ इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं उन्हें अपने कार्यक्रमों को 'साक्षरता' उपागम के बजाय 'शिक्षित' उपागम के अन्तर्गत लाना होगा। एम.बी. फाउंडेशन जैसी संस्था के कार्य इस प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस कार्यक्रम में ब्रिज कोर्स जैसे उपायों से उन्हें एक संस्थागत रूप से शैक्षिक अनुभव प्रदान करने के साथ प्रयास किये गये हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि वास्तविक लक्ष्य उन्हें शिक्षा की मुक्ष्यधारा में लाने तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज की मुख्यधारा में लाने का है। विपरीत परिस्थितियों में जीने की बाध्यता, प्रवासन, गरीबी और

अपवंचन- जनित सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया के बीच समाज के निम्नतम तबके से आनेवाले ये बच्चे क्या अपने 'बाल-अधिकारों' के दावेदार नहीं हैं?

## *संदर्भ*

आप्तेकर, एल. (1994) "स्ट्रीट चिल्ड्रेन इन डेवलपिंग वर्ल्ड : ए रिव्यू ऑफ देयर कंडीशन" क्रास कल्चरल रिसर्च, 28(3), पृ. 195-224

वेनीटेज, एस. (2011) स्टेट ऑफ वर्ल्ड्स स्ट्रीट चिल्ड्रेन, साउथ हैम्पटन : हॉब्स

यूनीसेफ (1992) कन्वेशन ऑन द राइट ऑफ चाइल्ड, न्यूयार्क : यूनाईटेड नेशन्स

यूनीसेफ (1985) चिल्ड्रेन स्पेशली इन डिफिकल्ट सिचुएशन : स्ट्रीट चिल्ड्रेन एन एनोटेडेड विविलोग्राफी, लंदन : यूनाइटेड नेशन्स

रिजनी, आई. और सैण्डर्स, टी.जे. (1987) ब्राजील स्ट्रीट चिल्ड्रेन : मिसकन्शेपसन एंड रिएलिटी, रिओ डी जेनेरिओ : यूनीवरसिडाडे सांटा उर्सुला

लस्क, एम. डब्ल्यू. (1994) "स्ट्रीट चिल्ड्रेन प्रोग्राम इन लैटिन अमेरिका", जनरल ऑफ सोसिओलॉजी एंड सोशल वेलफेअर, 16(1), पृ. 55-77

लस्क, एम. डब्ल्यू. (1992) "स्ट्रीट चिल्ड्रेन ऑफ रिओडिजेनिरिओ", इंटरनेशनल सोशल वर्क, 35, पृ. 293-305

मसाबा, एन. (2004) "बीइंग विद गर्ल स्ट्रीट चिल्ड्रेन", एजेंडा, 61, पृ. 126-132

कासगोव, जे. (1990) "टूवर्ड्स अ वर्किंग डिफिनेशन ऑफ स्ट्रीट चिल्ड्रेन", इंटरनेशनल जनरल ऑफ सोशल वर्क, 33, पृ. 185-92

एनन्यू, जे. (2003) "डिफिकल्ट सर्कमस्टैंसेस : सम रिफ्लेकशन ऑन स्ट्रीट चिल्ड्रेन इन अफ्रीका", चाइल्ड यूथ एंड एनवायरमेंट, 13(1), पृ. 135-157

बिसानो, एल. (1990) दि सोशलाइजेशन ऑफ स्ट्रीट चिल्ड्रेन : दि डेवलपमेंट एंड ट्रांसफरमेशन ऑफ आइडेंटी, 3, पृ. 139-161

रिजनी, आई. और बटलर, वी. (2003) "लाइफ ट्राजेक्टरी ऑफ चिल्ड्रेन एंड एडोलसेंट लिविंग इन स्ट्रीट ऑफ रिओडिजेनिरिया", चाइल्ड, यूथ एंड एनवायरमेंट, 13(1), पृ. 165-189

मोरा एस., (2002) "दि सोशल कन्सट्रक्शन ऑफ स्ट्रीट चिल्ड्रेन : कान्फीगुरेशन एंड इम्पलीकेशन", ब्रिटिश जनरल ऑफ सोशल वर्क, 32, पृ. 353-367

रंगनाथन, एन., चौधरी बी. और मिश्रा, आर.के. (2012) "बीयान्ड द लूकिंग ग्लास : अण्डरस्टैंडिंग दि साइको सोशल वर्ल्ड ऑफ स्ट्रीट चिल्ड्रेन", अप्रकाशित शोध पत्र, कम्पेटिव एजुकेशन सोसाइटी कानफ्रेन्स 2012

दि राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपल्सरी एजूकेशन बिल (2008), एम.एच.आर.डी., नई दिल्ली:

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

# सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत शिक्षकों को प्रदान की जाने वाली शिक्षक अनुदान राशि के उपयोग का समीक्षात्मक अध्ययन

**ए.पी. पाण्डेय*** और **संतोष शर्मा****

## प्रस्तावना

''शिक्षा विकास की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के साथ धीरे-धीरे अपना अनुकूलन करता है।'' – रेमाण्ट

''शिक्षा का अर्थ है मस्तिष्क को इस योग्य बनाना कि वह शाश्वत सत्य की खोज कर सके, उसे अपना बना सके और उसकी अभिव्यक्ति कर सके।'' – टैगोर

शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्ष' धातु से बना है और इसका अर्थ सीखना अथवा ज्ञान अर्जन करना है।

उपनिषद् में शिक्षा को आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया कहा गया है। स्वामी विवेकानन्द का कथन है – ''हम ऐसी शिक्षा चाहते है जिससे चरित्र का निर्माण हो, मन शक्ति बढ़े, बुद्धि का विस्तार हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

शिक्षक को विद्यार्थी के अस्तित्व का समग्र संतुलित विकास करने की बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गई है। शिक्षक हमारी नई पीढ़ी में हमारे लोकाचार अर्थात् सत्य, करुणा, मानवता और श्रम के महत्व तथा आदर्श भरता है। वह अपने विद्यार्थियों की बुद्धि को तर्क से तीक्ष्ण, और प्रशिक्षित करके उन्हें ज्ञान की शिक्षा देता है। शिक्षक के सम्मुख एक महत्वपूर्ण कार्य प्रत्येक विद्यार्थी के व्यक्तित्व के शारीरिक, बौद्धिक, कलात्मक तथा सृजनात्मक जैसे विभिन्न पक्षों में छिपी विशाल अन्तःशक्ति को जागृत करना है। शिक्षा के तीन आधार स्तम्भ हैं –

* प्राध्यापक - शासकीय स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, उज्जैन
** एम.एड. प्रशिक्षार्थी

अध्यापक-छात्र, विद्यालय एवं समाज – इन तीनों में से एक भी अपनी सही भूमिका निभाने में असमर्थ होता है तो शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता है। शिक्षक का इन तीनों आधार स्तम्भों में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि शिक्षक अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा छात्रों को नवीन ज्ञान या अनुभव प्रदान करता है और उनके भावी जीवन का निर्माण उसी आधार पर होता है।

शिक्षक की सकारात्मक एवं रचनात्मक प्रवृत्ति शिक्षक के कार्य व व्यवहार को सहज बनाते हैं। क्योंकि छात्र शिक्षक के व्यक्तित्व एवं क्रियाकलापों का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं। किसी भी विषय के शिक्षण की बात हो, विषय वस्तु, पाठ्य सामग्री शिक्षण उपकरण, शिक्षण विधि आदि शिक्षण के सभी पहलूओं का सुसंगठित होना आवश्यक है। यही कारण है कि शिक्षण ही क्या सम्पूर्ण समाज के निर्माण का दायित्व अन्ततोगत्वा शिक्षक पर ही है। इसलिए कहा गया है कि किसी भी राष्ट्र का भाग्य शिक्षकों के हाथों में निहित होता है।

प्राचीनकाल से ही मनुष्य अपने बच्चों को आश्रमों, विद्यालयों, गाँव की चौपाल पर व्यावहारिक शिक्षा देता रहा है। समाज के विकास के साथ-साथ शिक्षा एवं शिक्षा प्राप्त करने के स्थानों (विद्यालय) के स्वरूप में परिवर्तन होते गये हैं। शिक्षा के उद्देश्य, कार्य क्षेत्र व मान्यताएँ परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही हैं।

प्राचीनकाल में शिक्षा का मुख्य ध्येय बच्चों की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना था। वर्तमान में शिक्षा को अंग्रेजी शब्द 'एज्यूकेशन' का पर्याय माना जाता है जिसका अर्थ है – विकसित करना, आगे बढ़ना या प्रगति करना। इस प्रकार शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा से है जो बालक को विद्यालय में प्रदान की जाती है। इस प्रकार की शिक्षा का स्थान अवधि, पाठ्यक्रम आदि सभी कुछ निश्चित होता है इस अर्थ में व्यक्ति का विद्यालयी जीवन ही उसका शिक्षा-काल होता है।

शिक्षा द्वारा मनुष्य अपने वातावरण में समायोजन करने का प्रयत्न करता है। अतः उसे विद्यालय में वह वातावरण मिलना चाहिए जिससे वह अपनी प्रवृत्तियों का परिमार्जन कर सके। अतः यह वातावरण तैयार करने का दायित्व समाज एवं शासन का होना चाहिए जो समुचित शिक्षण सुविधाओं को उपलब्ध करवाये। तभी शिक्षा को अपने उद्देश्य में सफल माना जाएगा, जब वह व्यक्ति के व्यवहारों को परिमार्जित करने में सफलता प्राप्त कर चुकी हो।

प्रारम्भिक शिक्षा सम्पूर्ण जीवन की आधारशिला होती है। अत: यह अति आवश्यक है कि प्रारम्भिक स्तर पर विद्यालयों में सभी प्रकार की शिक्षण सुविधाओं के साथ-साथ विद्यार्थियों एवं शिक्षण का स्तर उच्च गुणवत्ता वाला हो।

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में शासन की सर्वोच्च प्राथमिकता में प्रारम्भिक शिक्षा को रखा गया है। आज की शिक्षा की अनिवार्य शर्त केवल परीक्षा पास करके एक कक्षा से दूसरी कक्षा में कक्षोन्नत होना, न होकर छात्र का अपेक्षित उपलब्धि स्तर प्राप्त करना है।

शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन सर्वशिक्षा अभियान के साथ प्रारम्भ हुआ है, जिसके प्रथम चरण में विद्यालय भवन, शिक्षकों की नियुक्ति एवं विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि स्तर में गुणात्मक सुधार हेतु शैक्षिक सुविधाओं एवं विद्यालयों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन सुविधाओं की उपलब्धता पर ध्यान केंद्रित किया गया।

विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए उचित वातावरण मिल सके, इस हेतु विद्यालय का भवन, भवन में कक्षों की पर्याप्त संख्या, आवश्यकतानुसार शिक्षकों की पूर्ति, खेल का मैदान, खेलकूद सामग्री, शिक्षण सहायक सामग्री, पेयजल, शौचालयों, पाठ्य पुस्तकों आदि की सुविधाएँ शासन द्वारा विद्यालयों को उपलब्ध करवायी जा रही हैं।

**शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का संक्षिप्त परिचय**

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रत्येक बालक के अधिकार की संवैधानिक कल्पना को साकार करने के लिए और सभी के लिए शिक्षा की गुणवत्ता की जरूरत के प्रति संवेदनशील संस्थाओं में प्रारम्भिक शिक्षा की विकेन्द्रीकरण योजना तथा प्रबंधन में सहभागिता के लिए उनकी भूमिका को परिभाषित करने तथा उनका सृजन करने के लिए उपबंध करने हेतु 'नि:शुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009' बनाया गया। यह अधिनियम 01 अप्रैल 2010 से लागू किया गया है।

- अधिनियम में नि:शुल्क शिक्षा का प्रावधान है।
- नि:शुल्क से तात्पर्य किसी भी बच्चे द्वारा ऐसी कोई फीस/ शुल्क/ व्यय देय नहीं होगा जो कि उसकी प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने में बाधक हो।
- अनिवार्य से तात्पर्य-विधेयक के प्रावधानों के तहत् 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों का शत-प्रतिशत नामांकन, शतप्रतिशत उपस्थिति तथा शत-प्रतिशत बच्चों को

प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कराने की संवैधानिक अनिवार्यता राज्य सरकार की है। पालकों के लिए मूलभूत दायित्व में इसे शामिल किया गया है।

**शिक्षा का अधिकार अधिनियम के मुख्य प्रावधान**

- ड्रॉपआऊट एवं अनामांकित बच्चों को उनकी उम्र के अनुरूप कक्षा में नामांकन।
- इस हेतु अन्य बच्चों के समकक्ष लाने हेतु बच्चों के विशेष शिक्षण की व्यवस्था करना।
- प्रवेशित बच्चों की आयु 14 वर्ष पूर्ण हो जाने पर भी उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने का अधिकार होगा।
- प्रवेश हेतु जन्म प्रमाण–पत्र एवं स्थानांतरण प्रमाण पत्र की बाध्यता नहीं रहेगी।
- किसी भी बच्चे को कक्षा में दंड देने पर प्रतिबंध होगा।
- बच्चों को शारीरिक दंड देना एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करना पूर्णतः प्रतिबंधित रहेगा।
- समस्त बच्चों के लिए उनके निर्धारित पड़ोस में शिक्षा की सुविधा 3 वर्ष में उपलब्ध कराने की राज्य सरकार की बाध्यता होगी।

**शासन/स्थानीय निकाय के दायित्व**

- 6 से 14 वर्ष के बच्चों हेतु निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति एवं प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्यतः सुनिश्चित करना।
- अनामांकित एवं शाला से बाहर बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
- प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने तक बच्चों के प्रवेश, उपस्थिति एवं उपलब्धि स्तर की नियमित मॉनिटरिंग की व्यवस्था करना।
- समय पर पाठ्यक्रम तैयार करना, शिक्षक प्रशिक्षण देना आदि।

**शिक्षकों के सम्बन्ध में प्रावधान**

- नियुक्ति हेतु शिक्षकों की शैक्षणिक योग्यता का निर्धारण केन्द्र सरकार द्वारा प्राधिकृत अकादमिक प्राधिकरण द्वारा किया जाएगा। निर्धारित योग्यता अनुरूप शिक्षकों की व्यवस्था 5 वर्ष में सुनिश्चित करनी होगी।
- अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित करना।

- शिक्षक के अकादमिक उत्तरदायित्व का निर्धारण करना होगा।
- शिक्षकों का गैर शिक्षकीय कार्य में लगना – प्रतिबंधित रहेगा, सिर्फ दशकीय जनगणना, चुनाव एवं आपदा राहत को छोड़कर किसी भी गैर-शासकीय कार्य में नहीं लगाया जा सकेगा।
- शिक्षकों को वेतन एवं सेवा शर्तों का निर्धारण स्पष्ट रूप से राज्य द्वारा किया जाएगा।

**शाला के सम्बन्ध में प्रावधान**

- निर्वाचित प्रतिनिधियों, अभिभावक एवं शिक्षक की शाला प्रबंधन समिति के माध्यम से सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा दिया जाएगा।
- कमजोर एवं वंचित वर्ग को आनुपातिक प्रतिनिधित्व दिया जाएगा।
- शाला विकास योजना निर्माण, प्रबंधन, मॉनिटरिंग का कार्य स्थानीय निकाय के सहयोग से शाला प्रबंधन समिति द्वारा किया जाएगा।
- गैर अनुदान प्राप्त अशासकीय शालाओं के लिए अपने पड़ोस के 25 प्रतिशत बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना अनिवार्य होगा।
- अधिनियम लागू होने पर मापदंड पूर्ण करने हेतु 3 वर्ष की समय सीमा निर्धारित होगी।
- समस्त शालाओं-शासकीय/निजी – में न्यूनतम अधिसंरचना की उपलब्धता 3 वर्ष की समय सीमा में करना अनिवार्य होगा।
- प्रत्येक शाला हेतु न्यूनतम कार्य दिवस एवं शिक्षण के घंटे निम्नानुसार रहेंगे –

| | |
|---|---|
| 200 दिवस | प्राथमिक स्तर |
| 220 दिवस | माध्यमिक स्तर |
| 800 शैक्षणिक घंटे | प्राथमिक स्तर |
| 1000 शैक्षणिक घंटे | माध्यमिक स्तर |

**पाठ्यक्रम एवं पठन-पाठन सामग्री**

- पठन-पाठन सामग्री एवं उपकरण कक्षा के अनुरूप होंगे।
- प्रत्येक शाला में एक पुस्तकालय, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, कहानियों की किताबें होंगी।

- खेलकूद सामग्री, खेलकूद हेतु उपकरण रहेंगे।
- पाठ्यक्रम का निर्धारण अकादमिक प्राधिकरण द्वारा किया जाएगा।
- प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण होने तक कोई बोर्ड परीक्षा नहीं होगी।

## अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

शिक्षा का उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। अत: शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। समाज अपनी संस्कृति एवं मूल्यों को शिक्षण द्वारा संचित करता है। ऐसे में शिक्षक की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है परन्तु शिक्षक अपने दायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक तब ही कर सकेगा जब उसे सभी आवश्यक सहायता प्राप्त हो। विद्यालय में आवश्यक सुविधाओं के उपलब्ध होने से शिक्षा के गुणात्मक सुधार में वृद्धि होती है।

सर्व शिक्षा अभियान तथा जन शिक्षा अधिनियम 2002 लागू होने के पूर्व तक विद्यालयों में स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए शासन द्वारा किसी अतिरिक्त सहायता राशि का प्रावधान नहीं था।

यह अध्ययन निम्न पहलुओं पर भी प्रकाश डालने का प्रयास करेगा—

1. क्या शिक्षकों को 'शिक्षक अनुदान राशि' समय पर प्राप्त होती है?
2. क्या शिक्षकों द्वारा अनुदान राशि का उपयोग समय-समय पर आवश्यकतानुसार किया जाता है?
3. शिक्षक अनुदान राशि का उपयोग अन्य कार्यों में तो नहीं किया जा रहा है?
4. 'शिक्षक अनुदान राशि' के उपयोग के पश्चात् कठिन अवधारणाओं के शिक्षण में सहायता मिलती है?

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु इस अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई।

## अध्ययन के उद्देश्य

जीवन के सभी कार्य सोद्देश्य होते हैं। उद्देश्य के बिना जीवन दिशाहीन हो जाता है, किसी भी कार्य की सफलता उसके निर्धारित किये गये उद्देश्यों पर बहुत निर्भर करती है। उद्देश्यों व लक्ष्यों का निर्धारण ही कार्य को प्रगति प्रदान करता है। उद्देश्यों की स्पष्टता अध्ययन को सरल व सफल बना देती है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने कुछ उद्देश्य निर्धारित किए हैं ताकि शोधकर्ता को दिशा मिल सके।

1. शिक्षकों को प्राप्त अनुदान राशि का किस प्रकार उपयोग हो रहा है, यह जानना।
2. अनुदान राशि द्वारा निर्मित शिक्षण सहायक सामग्री के उपयोग को जानना।
3. कठिन बिन्दुओं की अवधारणा के निराकरण में शिक्षक अनुदान राशि की उपादेयता के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
4. प्रत्येक विषय के विभिन्न कठिन शिक्षण बिन्दुओं पर उपलब्ध सहायक सामग्री एवं उसके उपयोग को जानना।

**तकनीकी शब्दों की व्याख्या**

1. सर्वशिक्षा अभियान – केन्द्र सरकार द्वारा संचालित एक अभियान है, जिसका लक्ष्य 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बालक/बालिकओं का शत–प्रतिशत नामांकन, शिक्षा के समान अवसर प्रदान करना तथा विद्यालय में आवश्यक संसाधनों की समुचित व्यवस्था करना।
2. शिक्षक अनुदान राशि – सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों को सहायक शिक्षण करने हेतु क्रय करने अथवा निर्माण करने हेतु प्रदान की जाने वाली सहायता राशि।

**परिकल्पना**

परिकल्पना एक अनुमान है जिसे अंतिम अथवा अस्थाई रूप में किसी निरीक्षित तथ्य अथवा दशाओं की व्याख्या हेतु स्वीकार किया गया हो एवं जिसके अन्वेषण को आगे पथ–प्रदर्शन प्राप्त होता हो।

*— गुड तथा स्केट्स*

प्रस्तुत अध्ययन की निम्नलिखित परिकल्पनाएँ निर्धारित की गई हैं —

1. शिक्षा अनुदान राशि का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. शिक्षक अनुदान राशि का शिक्षण सहायक सामग्री की उपलब्धता पर कोई सार्थक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है।
3. शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग से अध्यापन की सरलता व रोचकता पर कोई सार्थक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है।
4. विषय से संबंधित कठिन अवधारणाओं के निराकरण में सहायक सामग्री के प्रयोग से कोई सार्थक प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता है।

## परिसीमन

प्रस्तुत शोध के क्षेत्र में शोधकर्ता की सीमाएं हैं जिसके कारण वह अपने इस शोध कार्य को अधिक विस्तृत नहीं कर सकता है। शोधकर्ता के समक्ष समय की एक निश्चित सीमा है जिसमें उसे यह लघु–शोध प्रबन्ध पाठ्यक्रम की आंशिक प्रतिपूर्ति के लिए प्रस्तुत करना हैं। इसके साथ ही शोधकर्ता को अपने संसाधनों को भी ध्यान में रखना है, वहीं न्यादर्श की उपलब्धता की भी सीमा है। इसी को ध्यान में रखते हुए अपने शोधकार्य का क्षेत्र उज्जैन जिले के खाचरौद विकासखण्ड के अन्तर्गत 10 प्राथमिक विद्यालयों एवं 10 माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों का चयन अध्ययन हेतु किया गया है।

शोध उपकरण प्रदत्तों को एकत्रित करने का एक ऐसा साधन है, जिसमें अध्ययन के सम्बन्ध में अन्वेषण करने तथा जानकारी प्राप्त करने के लिए तैयार किये गये प्रारूपों का उपयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत आने वाले प्रारूपों में सर्वाधिक उपयुक्त उपकरण है — प्रश्नावली।

प्रस्तुत शोध में उज्जैन जिले के खाचरौद विकासखण्ड के 10 प्राथमिक विद्यालयों तथा 10 माध्यमिक विद्यालयों का चयन यादृच्छिक रूप से किया गया है।

**प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं की सूची**
**विकासखण्ड - खाचरौद**

| क्र. | विद्यालय का नाम | प्रधानाध्यापक | शिक्षक अध्यापक वर्ग 2 | सहा.शिक्षक/ सहा. अध्यापक | योग |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | शा.प्रा.वि. श्रीवच्छ | 1 | – | 3 | 4 |
| 2 | शा.प्रा.वि. लेकोडिया | 1 | – | 2 | 3 |
| 3 | शा.प्रा.वि. उमरना | 1 | – | 3 | 4 |
| 4 | शा.प्रा.वि. पचलासी | 1 | – | 2 | 3 |
| 5 | शा.प्रा.वि. खेड़ावदा | – | – | 2 | 2 |
| 6 | शा.प्रा.वि. लोहचितारा | – | – | 3 | 3 |
| 7 | शा.प्रा.वि.चौकी जुर्नादा | 1 | – | 3 | 4 |
| 8 | शा.प्रा.वि. खेड़ावदा | – | – | 2 | 2 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 9 | शा.प्रा.वि. बुरानाबाद | 1 | – | 3 | 4 |
| 10 | शा.प्रा.वि. कंचनखेड़ी | – | – | 2 | 2 |
| माध्यमिक | | | | | |
| 1 | शा.मा.वि. पचलासी | – | 3 | – | 3 |
| 2 | शा.मा.वि. श्रीवच्छ | – | 3 | – | 3 |
| 3 | शा.मा.वि. उमरना | – | 2 | – | 2 |
| 4 | शा.मा.वि. पचलासी | – | 3 | – | 3 |
| 5 | शा.मा.वि. बंजारी | 1 | 3 | – | 4 |
| 6 | शा.मा.वि. लोहचितारा | – | 2 | – | 2 |
| 7 | शा.मा.वि. भाटखेडी | – | 3 | – | 3 |
| 8 | शा.मा.वि. खाचरौद 2 | 1 | 3 | – | 4 |
| 9 | शा.मा.वि. खेड़ावदा | – | 3 | – | 3 |
| 10 | शा.मा.वि. कंचनखेड़ | – | 3 | – | 3 |

**योग – विद्यालय 10 + 10 = 20 कुल योग शिक्षक एवं प्रधानाध्यापक 60**

## शोध अध्ययन की प्रविधि

शोधकर्ता द्वारा उज्जैन जिले के खाचरौद विकासखण्ड के अन्तर्गत 10 शासकीय प्राथमिक शालाओं एवं 10 माध्यमिक शालाओं में जाकर इन शालाओं के प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों से प्रश्नावली के उत्तर प्राप्त किये गये। सभी प्राप्त प्रश्नावली का सारणीयन कर विश्लेषण कार्य किया गया। विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्ष प्राप्त कर परिकल्पनाओं को सत्यापित किया गया।

## प्रदत्तों का संकलन

प्रत्येक अनुसंधान कार्य विभिन्न चरणों एवं सोपानों से होता हुआ अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है। किसी भी शोध कार्य को करते समय उद्देश्यों को दृष्टिगत रखकर विभिन्न उपकरणों की सहायता से प्रदत्तों व सूचनाओं को एकत्र किया जाता है। इन प्रदत्तों के संकलन में जितनी सावधानी रखी जाय, प्राप्त निष्कर्ष की विश्वसनीयता व वैधता उतनी ही अधिक होगी। प्रस्तुत शोध कार्य में प्रदत्तों के संकलन में उज्जैन जिले की खाचरौद विकासखण्ड के 10 शासकीय प्राथमिक विद्यालयों एवं 10 माध्यमिक विद्यालयों

का चयन किया गया।

प्रदत्तों के संकलन हेतु प्रधानाध्यापक/शिक्षकों के लिए एक प्रश्नावली तैयार की गई, जिसमें शिक्षक अनुदान राशि की शासन द्वारा प्राप्ति, उपयोगिता तथा उपलब्धता के सम्बन्ध में प्रत्येक प्रधानाध्यापक/ शिक्षक से प्रश्नावली के माध्यम से प्रदत्तों का संकलन किया गया।

चयनित विद्यालयों के शिक्षकों के सहयोग से प्रश्नावली के माध्यम से प्रदत्तों का संकलन अध्ययनकर्ता द्वारा स्वयं विद्यालयों में जाकर किया गया।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में प्रारम्भिक शिक्षा हेतु सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली शिक्षक अनुदान राशि के उपयोग से संबंधित जानकारी एकत्रित की गई। प्राप्त हुए उत्तरों को सारणीबद्ध कर उनका प्रतिशत निकालकर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

**प्रश्नावलियों का विश्लेषण**

प्रधानाध्यापक/शिक्षकों से प्राप्त प्रश्नावलियों के उत्तर का विश्लेषण निम्नानुसार है :

**तालिका-1**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि कब प्राप्त होती है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | सत्र के आरम्भ में | सत्र के अन्त में | सत्र के मध्य में | निश्चित नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 15 | 45 | – | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 25 | 75 | – | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि शिक्षक अनुदान राशि 25% शिक्षकों के अनुसार सत्र के अन्त में तथा 75% के अनुसार शिक्षक अनुदान राशि सत्र के मध्य में प्राप्त होती है। अतः यह कहना प्रासंगिक है कि न्यादर्श की शालाओं के 25% शिक्षक उस सत्र में राशि का प्रयोग नहीं कर पाते है। ऐसा राशि समय से प्राप्त नहीं होने के कारण होता है।

**तालिका-2**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि कब प्राप्त होती है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | सत्र के आरम्भ में | सत्र के अन्त में | सत्र के मध्य में | आवश्यकता अनुसार | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 2 | 18 | 40 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 3.34 | 30 | 66.66 | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार 3.34% शिक्षकों द्वारा अनुदान राशि का उपयोग सत्र के अंत में 30% शिक्षकों द्वारा सत्र के मध्य में तथा 66.66% शिक्षकों द्वारा आवश्यकतानुसार किया जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि 30% शिक्षक राशि का उपयोग सत्र के मध्य में कर पाते हैं।

**तालिका-3**

**प्र. – शिक्षक अनुदान की राशि का उपयोग किस प्रकार किया जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | सहायक सामग्री निर्माण में | सहायक सामग्री क्रय करने में | शाला संबंधी अन्य व्यय में | नहीं किया जाता | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 21 | 39 | – | – | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 35 | 65 | – | – | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि 35% शिक्षक अनुदान राशि, सहायक सामग्री निर्मित करने में खर्च करते हैं जबकि 65% सहायक सामग्री क्रय करते हैं। अत: यह कहना सही है कि अधिकांश शिक्षक सहायक सामग्री क्रय करते हैं।

**तालिका-4**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि कितनी प्राप्त होती है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | 200 रु. | 300 रु. | 400 रु. | 500 रु. | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | – | – | 60 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | – | – | 100 | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि सभी 100% शिक्षकों को निर्धारित दर 500 रु. के मान से अनुदान राशि प्राप्त होती है।

**तालिका-5**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि किसके निर्देशन में खर्च की जाती है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | प्रधान अध्यापक | राज्य शिक्षा केन्द्र | शाला प्रबंध समिति | शिक्षक सुविधा के अनुसार | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 2 | – | 8 | 50 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 3.33 | – | 13.33 | 83.34 | 100 |

तालिका के अनुसार 3.33% शिक्षक प्रधानाध्यापक के निर्देश से राशि व्यय करते है। 13.33% शाला प्रबंध समिति के निर्देश से तथा 83.34% शिक्षक स्वयं की सुविधा अनुसार खर्च करते हैं। यह कहना प्रासंगिक है कि 3.33% शिक्षक प्रधानाध्यापक के निर्देश से प्रभावित होकर राशि खर्च करते हैं।

**तालिका-6**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि बैंक से आहरण में शाला प्रबंध समिति की भूमिका होती है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | बैठक में अनुमोदन किया जाता है | शाला प्रबंध समिति रुचि नहीं लेती | राशि आहरण में शिक्षकों को नहीं लेते | राशि आहरित नहीं करने देने हेतु परेशान करते | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 49 | 5 | 6 | – | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 81.67 | 8.33 | 10 | – | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि 81.67% शिक्षकों के अनुसार अनुदान की राशि आहरित करने के लिए बैठक में अनुमोदन कराया जाता है। 8.33% शिक्षकों के अनुसार शाला प्रबंध समिति में रुचि नहीं लेते। 10% के अनुसार शाला प्रबंधन समिति राशि आहरण में शिक्षकों को परेशान करते है। अतः यह कहा जा सकता है कि 18.33% शिक्षकों को शाला प्रबंध समिति राशि आहरण में या तो परेशान करती है अथवा सहयोग प्रदान नहीं करती।

**तालिका-7**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि से क्रय करने की कार्यवाही की जाती है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | शिक्षा विभाग द्वारा | शाला समिति द्वारा | शिक्षक स्वयं द्वारा | क्रय नहीं किया जाता | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 6 | 54 | – | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 10 | 90 | – | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार 10% शिक्षकों के मतानुसार शाला प्रबंध समिति द्वारा सहायक सामग्री क्रय की कार्यवाही की जाती है। 90% शिक्षक स्वयं सहायक सामग्री क्रय करते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि 10% शिक्षकों के अनुसार सहायक सामग्री क्रय करने में शाला प्रबंध समिति द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है।

**तालिका-8**

**प्र. – क्या शिक्षक अनुदान राशि के उपयोग करने हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | वर्ष में एक बार | वर्ष में दो बार | कभी-कभी | नहीं दिया जाता | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 07 | – | 36 | 17 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 11.66 | – | 60 | 28.34 | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 11.66% शिक्षकों के अनुसार वर्ष में एक बार अनुदान राशि के उपयोग हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है। 60% के अनुसार कभी-कभी दिया जाता है

तथा 28.34% के अनुसार प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। यह कहना प्रासांगिक है कि 28.34% शिक्षकों को राशि के उपयोग हेतु कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता।

**तालिका-9**

**प्र. – शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | सभी विषयों पर | गणित विषय पर | विज्ञान विषय पर | प्रशिक्षण नहीं दिया जाता | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 41 | 9 | 10 | – | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 68.34 | 15 | 16.66 | – | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार 68.34% शिक्षकों का मत है कि सभी विषयों की शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है जबकि 15% शिक्षकों के अनुसार केवल गणित विषय पर शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण हेतु प्रशिक्षण जाता है तथा 16.66% के अनुसार विज्ञान विषय पर प्रशिक्षण सहायक सामग्री दिया जाता है। अतः यह कहना प्रासंगिक है कि लगभग 31.6% शिक्षक मानते हैं कि केवल गणित और विज्ञान विषयों पर सहायक सामग्री निर्माण पर ही प्रशिक्षण दिया जाता है।

**तालिका-10**

**प्र. – क्या भूगोल शिक्षण के दौरान विद्यालय में मानचित्रों की उपलब्धता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 22 | 37 | 01 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 36.67 | 61.66 | 1.67 | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 36.67 शिक्षकों के मतानुसार भूगोल शिक्षण संबंधी मानचित्रों की उपलब्धता आवश्यकता से कम है। 61.66% शिक्षकों के मतानुसार पर्याप्त संख्या है तथा मात्र 1.67% शिक्षकों के अनुसार उपलब्ध नहीं है। अतः निश्चित तौर पर

अत: यह कहा जा सकता है कि 36.67% शिक्षक विद्यालयों में भूगोल शिक्षण हेतु मानचित्र की उपलब्धता कम होने के कारण उपयोग नहीं कर पाते।

**तालिका-11**

**प्र. - सामाजिक विज्ञान शिक्षण के दौरान संबंधित चार्ट्स की उपलब्धता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 4 | 11 | 42 | 3 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 6.67 | 18.33 | 70 | 5 | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार 6.67% शिक्षक मानते हैं कि सामाजिक विज्ञान शिक्षण संबंधित चार्ट्स आवश्यकता से अधिक हैं। 18.33% शिक्षकों के अनुसार आवश्यकता से कम हैं तथा 70% शिक्षकों के मतानुसार पर्याप्त हैं जबकि 5% के अनुसार उपलब्ध नहीं है।

**तालिका-12**

**प्र. – गणित विषय शिक्षण हेतु ज्यामितीय रचनाएं एवं चार्ट्स बनाये गये हैं?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 16 | 41 | 3 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 26.67 | 68.33 | 5 | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 26.67% शिक्षकों के मतानुसार गणित विषय शिक्षण हेतु ज्यामितीय रचनाएँ एवं चार्ट्स आवश्यकता से कम बनवाये गये हैं। 68.33% के अनुसार पर्याप्त एवं 5% के अनुसार नहीं बनवाये गये हैं। अत: यह कहना प्रासंगिक है कि 5% शिक्षकों द्वारा गणित शिक्षण के दौरान ज्यामितीय रचनाओं संबंधी सहायक सामग्री का प्रयोग नहीं किया जाता।

**तालिका–13**

**प्र. – शाला में जीवन विज्ञान शिक्षण हेतु विभिन्न तंत्रों परिसंचरण तंत्र, जनन तंत्र, पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र आदि से संबंधित चार्ट्स उपलब्ध हैं?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 23 | 31 | 6 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 38.34 | 51.66 | 10 | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि, 38.34 शिक्षकों के मतानुसार जीव विज्ञान शिक्षण के विभिन्न चार्ट्स आवश्यकता से कम हैं। 51.66% के अनुसार पर्याप्त एवं 10% के अनुसार उपलब्ध नहीं हैं। अतः स्पष्ट होता है कि 10% जीवन विज्ञान शिक्षण के दौरान चार्ट्स उपलब्ध न होने के कारण प्रयोग नहीं कर पाते।

**तालिका–14**

**प्र. – भौतिक विज्ञान से संबंधित सहायक सामग्री उपलब्ध है (लैंस, दर्पण और प्रिज्म आदि)?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 9 | 38 | 13 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 15 | 63.34 | 21.66 | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि 21.67% शिक्षकों के अनुसार भौतिक विज्ञान संबंधित सहायक सामग्री कम हैं। 51.66% शिक्षकों के अनुसार पर्याप्त एवं 26.67% शिक्षकों के अनुसार उपलब्ध नहीं है। अतः यह कहना प्रासांगिक है कि 26.67% शिक्षक भौतिक विज्ञान शिक्षण संबंधी सहायक सामग्री उपलब्ध न होने के कारण प्रयोग नहीं करते।

**तालिका–15**

**प्र. – शाला में प्रतिबिम्ब की रचना के चार्ट्स की उपलब्धता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 9 | 38 | 13 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 15 | 63.34 | 21.66 | 100 |

तालिका के अनुसार 15% शिक्षकों ने माना कि 'प्रतिबिम्ब की रचना' के चार्ट्स आवश्यकता से कम हैं तथा 63.34% शिक्षकों के मतानुसार पर्याप्त मात्रा में हैं, जबकि 21.66% शिक्षकों ने उपलब्ध नहीं होना बताया।

**तालिका–16**

**प्र. – शाला में मानव नेत्र से संबंधित चार्ट्स की उपलब्धता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 1 | 7 | 44 | 8 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 1.67 | 11.66 | 73.33 | 13.34 | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1.67% शिक्षकों के मतानुसार शाला में मानव नेत्र संबंधी चार्ट्स आवश्यकता से अधिक है। 11.66% के अनुसार आवश्यकता कम है तथा 73.33% शिक्षकों के मतानुसार पर्याप्त संख्या है जबकि 13.34% शिक्षकों के अनुसार मानव नेत्र संबंधी चार्ट्स नहीं हैं।

**तालिका–17**

**प्र. – रसायन विज्ञान शिक्षण हेतु विभिन्न रासायनिक पदार्थों की उपलब्धता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 19 | 18 | 23 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 31.67 | 30 | 38.33 | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार रसायन विज्ञान शिक्षण हेतु विभिन्न रासायनिक पदार्थों की उपलब्धता को 31.67% शिक्षकों ने आवश्यकता से कम, 30% ने पर्याप्त मात्रा में तथा 38.33% शिक्षकों ने उपलब्ध नहीं होना बताया। अत: यह स्पष्ट है कि 38.33% शिक्षक रसायन विज्ञान शिक्षण के दौरान प्रायोगिक कार्य इसलिए नहीं करवा पाते क्योंकि आवश्यक रसायन उपलब्ध नहीं होते हैं।

**तालिका-18**

**प्र. – गणित विषय शिक्षण हेतु ज्यामितीय रचनाएं एवं चार्ट्स बनाये गये हैं?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | – | 17 | 26 | 17 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | – | 28.34 | 43.33 | 28.33 | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार रसायन विज्ञान शिक्षण हेतु प्रायोगिक उपकरणों की उपलब्धता 28.34% शिक्षकों के मत में कम मात्रा में है। 43.33% शिक्षकों के अनुसार पर्याप्त है तथा 28.33% शिक्षकों ने उपकरणों का उपलब्ध नहीं होना बताया।

**तालिका-19**

**प्र. – गणित विषय शिक्षण हेतु ज्यामितीय रचनाएं एवं चार्ट्स बनाये गये हैं?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | आवश्यकता से अधिक | आवश्यकता से कम | पर्याप्त | उपलब्ध नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 4 | 3 | 47 | 6 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 6.67 | 5 | 78.33 | 10 | 100 |

तालिका के अनुसार 6.67 शिक्षकों ने शाला में रंगीन चॉक की उपलब्धता आवश्यकता से अधिक दर्शायी। 5% शिक्षकों के अनुसार कम है तथा 78.33% शिक्षकों के मतानुसार पर्याप्त मात्रा में एवं 10% शिक्षकों के अनुसार उपलब्ध नहीं है।

## तालिका-20

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि का अन्य कार्यों में उपयोग किया जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | खेलकूद सामग्री क्रय में | सांस्कृतिक कार्यक्रम में | पुरस्कार वितरण में | अन्य कार्यों में नहीं किया जाता | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 3 | – | 1 | 56 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 5 | – | 1.67 | 93.33 | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि 5% शिक्षकों ने शिक्षक अनुदान राशि का उपयोग खेलकूद सामग्री क्रय करने में 1.67% शिक्षकों के अनुसार पुरस्कार वितरण हेतु खर्च करने में तथा 93.33% शिक्षकों के अनुसार अन्य कार्यों में उपयोग नहीं किया जाता है। अत: यह कहना प्रासंगिक है कि 6.67% शिक्षकों द्वारा शिक्षक अनुदान राशि का उपयोग शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण में न करके अन्य कार्यों में किया जाता है। यह अत्यमल्प में होने से विपरीत भाव नहीं डालेगा।

## तालिका-21

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि के अन्य कार्यों में व्यय हेतु क्या प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षकों को सुझाव या निर्देश दिया जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | सुझाव दिया जाता | निर्देश दिया जाता | कभी कभी | कभी नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 3 | – | 2 | 55 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 5 | – | 3.34 | 91.66 | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 5% शिक्षकों के अनुसार प्रधानाध्यापक द्वारा शिक्षक अनुदान राशि को अन्य कार्यों में खर्च करने हेतु सुझाव दिया जाता है। 91.66 के अनुसार निर्देश कभी नहीं दिया जाता। अत: यह कहा जा सकता है कि 5% शिक्षकों को प्रधानाध्यापक द्वारा राशि के अन्य कार्यों में खर्च करने हेतु दबाव डाला जाता है।

**तालिका-22**

**प्र. – शिक्षक अनुदान राशि या अन्य कार्यों में उपयोग किया जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | बनवाये जाते हैं | नहीं बनवाये जाते हैं | कभी कभी | छात्र रुचि नहीं लेते | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 33 | 1 | 16 | 10 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 55 | 1.67 | 26.66 | 16.67 | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार 55% शिक्षकों के अनुसार वे विद्यार्थियों से मॉडल चार्ट्स बनवाते हैं। 1.67% के अनुसार नहीं बनाये जाते तथा 26.66% शिक्षक कभी-कभी बनवाते हैं जबकि 16.67% शिक्षकों के अनुसार छात्र मॉडल्स चार्ट्स बनाने में रुचि नहीं लेते। अतः यह कहना उचित है कि अधिकांश शिक्षक छात्रों से भी सहायक सामग्री बनवाते हैं।

**तालिका-23**

**प्र. – शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग से कठिन शिक्षण बिन्दुओं का निराकरण सहज हो जाता है?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | हाँ | नहीं | कभी कभी | निश्चित नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 57 | – | 2 | 1 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 95 | – | 3.34 | 1.66 | 100 |

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 95% शिक्षक मानते हैं कि शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग से कठिन शिक्षण बिन्दुओं का निराकरण सहज हो जाता है। 3.34% शिक्षकों के अनुसार कभी-कभी ऐसा होता है। जबकि 1.66% शिक्षकों के मतानुसार वे उपरोक्त तथ्य को लेकर निश्चित नहीं हैं। अतः यह कहना प्रासंगिक है कि 1.66% शिक्षक, शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग द्वारा अधिगम पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति जागरुक नहीं हैं।

## तालिका-24

**प्र. – सहायक सामग्री के उपयोग से क्या छात्र कठिन शिक्षण बिन्दुओं के शिक्षण में रुचि लेते हैं?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | हाँ | नहीं | कभी कभी | निश्चित नहीं | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 46 | – | 11 | 3 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 76.66 | – | 18.34 | 5 | 100 |

उपरोक्त तालिका के अनुसार 76.66% शिक्षक मानते हैं कि सहायक सामग्री के प्रयोग से छात्र कठिन बिन्दुओं के शिक्षण में रुचि लेते हैं। 18.34% शिक्षकों के अनुसार कभी-कभी रुचि लेते हैं, जबकि 5% शिक्षकों के अनुसार वे उपरोक्त तथ्य को लेकर निश्चित नहीं हैं। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश शिक्षक यह मानते हैं कि छात्र सहायक सामग्री के प्रयोग से कठिन बिन्दुओं के शिक्षण में रुचि लेते हैं।

## तालिका-25

**प्र. – क्या शिक्षक अनुदान राशि पर्याप्त है? यदि नहीं तो कितनी होनी चाहिए?**

| क्र. | विवरण | विकल्प | | | | योग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | पर्याप्त है | 1000 रु. होनी चाहिए | 1500 रु. होनी चाहिए | 2000 रु. होनी चाहिए | |
| 1 | प्र.अ./शिक्षक | 33 | 21 | 5 | 1 | 60 |
| 2 | प्रतिशत | 55 | 35 | 8.33 | 1.67 | 100 |

तालिका से स्पष्ट है कि 55% शिक्षकों ने शिक्षण अनुदान राशि को पर्याप्त माना है। 35% शिक्षकों के अनुसार यह राशि 1000 रु. होनी चाहिए तथा 8.33% के अनुसार 1500 रु. होनी चाहिये जबकि 1.67% शिक्षकों के अनुसार 2000 रु. होनी चाहिए। अतः यह कहना सही प्रतीत होता है कि 45% शिक्षक अनुदान राशि को अपर्याप्त मानते हुए अनुदान राशि को बढ़ाना चाहते हैं।

## शोध का निष्कर्ष

प्रधानाध्यापकों / शिक्षकों से प्राप्त अभिमतों से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं —

1. तालिकाओं से प्राप्त निष्कर्ष के अनुसार शिक्षकों को शिक्षक अनुदान राशि सत्र के मध य में प्राप्त होती है तथा अधिकांश शिक्षकों द्वारा अनुदान राशि का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है।
2. तालिकाओं से प्राप्त निष्कर्ष के अनुसार अधिकतर शिक्षकों द्वारा शिक्षक अनुदान राशि से शिक्षण सहायक सामग्री बाजार से क्रय की जाती है, जबकि कम शिक्षकों द्वारा स्वयं निर्मित की जाती है।
3. तालिकाओं से यह निष्कर्ष भी प्राप्त होता है कि सभी शिक्षकों द्वारा शिक्षक अनुदान राशि आहरण हेतु निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया जाता है। राशि आहरण पूर्व शाला प्रबंध समिति की बैठक में अनुमोदन लिया जाता है तथा अनुदान राशि खर्च करने में शिक्षक को स्वतंत्रता रहती है।
4. तालिकाओं से प्राप्त निष्कर्ष के अनुसार शिक्षक अनुदान राशि को खर्च करने संबंध ी प्रशिक्षण कभी-कभी दिया जाता है तथा शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण हेतु सभी विषयों पर प्रशिक्षण दिया जाता है।
5. तालिकाओं से निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि भूगोल, सामाजिक विज्ञान तथा गणित विषयों से संबंधित शिक्षण सहायक सामग्री पर्याप्त मात्रा में है। जीव विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान से संबंधित सहायक सामग्री कुछ ही विद्यालयों में पर्याप्त मात्रा में है। प्रतिबिम्ब की रचना के चार्ट्स पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।
6. तालिका से यह भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि शाला में नेत्र सम्बन्धी चार्ट्स पर्याप्त मात्रा में हैं जबकि रसायन विषय संबंधी रासायनिक पदार्थों एवं उपकरणों की न्यूनता है तथा रंगीन चॉक पर्याप्त मात्रा में हैं।
7. तालिका से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अधिकतम शिक्षक, शिक्षक अनुदान राशि का उपयोग अन्य कार्यों में नहीं करते, अल्पमत शिक्षकों द्वारा अनुदान राशि का उपयोग अन्य कार्यों में किया जाता है।
8. प्रधानाध्यापक द्वारा कभी भी अनुदान राशि का अन्य कार्यों में खर्च हेतु सुझाव या निर्देश नहीं दिया जाता है।

9. तालिका से निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि शिक्षक द्वारा अनुदान राशि के उपयोग से विद्यार्थियों से भी मॉडल चार्ट्स इत्यादि तैयार करवाये जाते हैं।
10. शिक्षक मानते हैं कि सहायक शिक्षण सामग्री के प्रयोग से कठिन शिक्षण बिन्दुओं का निराकरण सहज हो जाता है।
11. निष्कर्ष प्राप्त होता है कि छात्र भी सहायक सामग्री के प्रयोग से सरलता से अधिगम करते हैं तथा पढ़ाई में रुचि लेते हैं।
12. 55 प्रतिशत शिक्षकों ने शिक्षक अनुदान राशि को पर्याप्त माना, जबकि मात्र 35 प्रतिशत शिक्षकों ने इसे 1000 रु. किये जाने की आवश्यकता जाहिर की।

## सुझाव

शोधकार्य के दौरान शोधकर्ता द्वारा किये गये क्षेत्र भ्रमण के समय देखने में आयी समस्याओं एवं प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं –

1. शिक्षक अनुदान राशि का समुचित प्रयोग हो सके इस हेतु प्रतिवर्ष शिक्षकों को सहायक सामग्री निर्माण के लिए आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
2. शिक्षक अनुदान राशि सत्र के प्रारम्भ में ही शिक्षकों को प्रदान कर दी जाये ताकि शिक्षक सत्रारम्भ से ही उसका समुचित उपयोग कर सकें।
3. शिक्षक अनुदान राशि आहरण की प्रक्रिया को परिवर्तित कर राशि सीधे संकुल केन्द्र से प्रदान की जाना चाहिए क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का अभाव है। प्राय: शाला प्रबंध समिति पदाधिकारी आहरण हेतु व्यवस्तता के कारण उपस्थित नहीं होते हैं।
4. अनावश्यक विलम्ब से बचने हेतु प्रक्रिया का आकलन कर उसमें आवश्यक परिवर्तन करना उचित प्रतीत होता है।
5. शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण पर विषयवार कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए तथा अनुदान राशि आहरण, खर्च, आदि पर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
6. वर्तमान शिक्षा का स्वरूप गतिविधि आधारित है। अत: शिक्षण कार्य में अधिकतम शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
7. शिक्षक अनुदान राशि 500 रु. से बढ़ाकर 1000 रु. कर दी जानी चाहिए।

8. विद्यालयों में आधुनिक बहुमाध्यम उपागम जैसे – टीवी, कम्प्यूटर, प्रोजेक्टर आदि की सुविधाएँ होनी चाहिए।

## *संदर्भ*


अग्रवाल व अस्थाना, मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन व मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

दत्ता संजय, पूर्व प्राथमिक विद्यालयी शिक्षा शिक्षण, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

गुप्त रामबाबू, शिक्षा दर्शन प्रकाश – ब्रह्मनगर, कानपुर, उ.प्र.

कुलश्रेष्ठ डॉ. एस.पी., शिक्षा तकनीकी के मूलाधार, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

माथुर डॉ. एस.एस., शिक्षण कला, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा–2

म.प्र. शासन, भोपाल, जन शिक्षा अधिनियम 2002, निर्देशिका (राशि के,भोपाल)

पाठक पी.डी. एवं त्यागी गुरुसरनदास, सफल शिक्षण कला, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

राज्य शिक्षा केन्द्र, सामर्थ्य, राज्य शिक्षा केन्द्र, भोपाल

राज्य शिक्षा केन्द्र, पालक शिक्षक संघ निर्देशिका

राज्य शिक्षा केन्द्र, शिक्षक प्रशिक्षण संदर्शिका 2005

राय पारसनाथ एंड सी.पी. राय, अनुसंधान परिचय

सेवानी एवं सिंह, शिक्षा सिद्धान्त एवं आधुनिक भारत में शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा–2

शर्मा डॉ. ओ.पी. एवं गुप्त डॉ. शोभा, उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, अगारा–2

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

# भूमंडलीकरण के दौर में परम्परागत भारतीय शिक्षा की प्रासंगिकता

**नरेश प्रसाद भोक्ता*** और **रूक्मिणी चौधरी****

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के आलोक में शिक्षा के भारतीयकरण के विविध पक्षों को उद्घाटित करना शिक्षा, व्यक्ति और समाज से संबंधित विकास के लिए आवश्यक है। अपने औपचारिक और अनौपचारिक रूप में शिक्षा विकास की एक सतत् प्रक्रिया है, जो व्यक्ति, समाज और संस्थानों को स्वरूप प्रदान करती है। अनौपचारिक शिक्षा का निश्चित स्वरूप नहीं होता है, वह सांस्थानिक ढाँचे से मुक्त होती है। पर अनौपचारिक शिक्षा का अपना एक सांस्थानिक स्वरूप होता है। अपने दोनों ही रूपों में शिक्षा समाज से प्रभावित होती है। और समाज को प्रभावित भी करती है। अब प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान में शिक्षा की जड़ें देश की संस्कृति में हैं? क्या शिक्षा देश की संस्कृति, सभ्यता और मूल्यों का संरक्षण करती है वह अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच किन रिश्तों को स्थापित करती है? शिक्षा आर्थिक विकास की किस अवधारणा को विकसित करती है? वैदिक संदर्भ में उसकी भूमिका का स्वरूप क्या है? शक्ति, सद्भावना और न्यायपूर्ण समाज रचना में शिक्षा की क्या भूमिका है? इन प्रश्नों के स्वचिन्तन में उद्भूत कोई सटीक उत्तर कई देशों की शिक्षा प्रणाली के पास नहीं है, क्योंकि उपनिवेशवादी देशों तथा विजित देशों में जो शिक्षा प्रणाली लागू है उससे देशज शिक्षा की विशिष्टताओं और मूल तत्वों को योजनाबद्ध तरीके से अलग किया गया। इस स्थिति को कई विचारकों और राज नेताओं ने समझा। परिणामतः विभिन्न देशों में विजेता देशों द्वारा लागू की गयी शिक्षा प्रणाली का विरोध प्रारम्भ हुआ। उदाहरण के लिए लैटिन अमेरिका में इसका विरोध पावलो फ्रेरे जैसे शिक्षा शास्त्री ने किया। भारत में उपनिवेशवादी शिक्षा का विरोध स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख हिस्सा एवं कार्यक्रम रहा। दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, अरविन्द घोष सहित कई राजनेताओं, बुद्धिजीवियों और समाज सुधारकों ने अंग्रेजों द्वारा थोपी गई शिक्षा प्रणाली का विरोध किया।

---

* निर्देशक, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
** शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

शिक्षा की शक्ति अद्‌भुत है। वह बदलाव का साधन है और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की प्रेरणा भी हैं। यदि शिक्षा बदलाव का माध्यम नहीं बनेगी तथा समाज में विकास की विवेचनात्मक सोच और दृष्टि विकसित नहीं करेगी तो वह अपनी सामाजिक उपयोगिता खो देगी। साथ ही यदि शिक्षा ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत और धरोहरों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक नहीं पहुँचायेगी तो समाज अपनी जड़ों से कट जाएगा तथा उसकी इतिहास समझ और सभ्यता-बोध समाप्त हो जाएगी। जब शिक्षा सांस्कृतिक परंपराओं और धरोहरों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है, तब वह देश की संस्कृति, जीवन और समाज से जुड़ती है। यदि वह इस कार्य को करने में असफल रहती है, तब देश में सांस्कृतिक और वैचारिक भ्रम पैदा होता है। इस तथ्य को डेलोर्स रिपोर्ट 1996 में स्वीकार किया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि– ''किसी देश की शिक्षा की जड़ें उस देश की संस्कृति में तथा उसकी प्रतिबद्धता प्रगति के लिए होनी चाहिए।'' डेलोर्स रिपोर्ट ने विश्व के देशों में तीन प्रकार के संकटों की चर्चा की है- आर्थिक संकट, प्रगति की अवधारणा संबंधी संकट और नैतिक संकट। दुनिया के देशों में इन संकटों की गंभीरता बहुत है। प्रत्येक समाज इन संकटों का धरातलीय और व्यवहारपरक समाधान अपने देश की शिक्षा में तलाश करता है।

भारत में शिक्षा कई अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है। शिक्षा युवाओं में अपनी संस्कृति और परंपरा के प्रति अलगाव पैदा कर रही है। उससे स्व की कोई अनुभूति नहीं हो रही है। हम शिक्षा में भारतीयता की तलाश कर रहे हैं, पर वह नहीं मिल पा रही है। विचार परम्परा का प्रारम्भ ग्रीक दार्शनिक चिन्तन से माना जाता है। ग्रीक चिन्तन में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू का महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिम के शैक्षिक और बौद्धिक चिन्तन पर उनके विचारों की छाया देखी जा सकती है। सुकरात ने व्यक्ति के स्वतंत्र चिन्तन पर जोर दिया। वह परम्परागत मान्यताओं तथा पूर्वाग्रहयुक्त विचारों का समर्थक नहीं था। सुकरात ने व्यक्ति और समाज के बीच आदर्श संबंधों की स्पष्ट परिभाषा नहीं दी। प्लेटो ने आदर्श राज्य राज्य की स्थापना की पहल की, पर उसका आदर्श राज्य सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व के विकास का आधार नहीं बन सका। प्लेटो ने ज्ञान का उपयोग न्याय प्राप्ति के लिए किया, पर प्लेटो का ज्ञान शासक वर्ग तक सीमित रहा। प्लेटो मनुष्यों की असमानता में विश्वास करता था। अरस्तू ने भी समाज को दो वर्गों में देखा। उसके मत में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो समाज और राज्य के कार्यों में सहभागी होते हैं। जो बुद्धिमान होते हैं, वे ही नेतृत्व कर सकते हैं। अरस्तू ने भी दासता का समर्थन किया।

सामाजिक और व्यक्तिगत भेदभाव पर आधारित प्राचीन ग्रीक मान्यता ने दासत्व का समर्थन किया है, वरन् मनुष्यों में समानता की नहीं। 'ओल्ड टेस्टामेंट' के अनुसार मनुष्य-मनुष्य में भेद है। यूरोप का ही दूसरा विचार जिसे मार्क्सवाद कहा जाता है, समाज में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के लिए संघर्ष का चिन्तन है। उसके लिए शिक्षा एक स्वतंत्र प्रक्रिया नहीं है, अपितु वह समाज में उत्पादक तथा उत्पादन पर नियंत्रण एवं उत्पादन संबंधों का निर्धारण करने वाली संस्थाओं के बीच पारस्परिक संबंधों के सांस्थानिक स्वरूप से प्रभावित हैं।

पाश्चात्य जगत में शिक्षा संबंधी कुछ अन्य विचार प्रतिमान हैं, जिन्होंने किसी न किसी सीमा तक शिक्षा को प्रभावित किया है जैसे प्रकृतिवादी चिन्तन जिसके प्रमुख विचारक रूसो को माना जाता है। रूसो का विचार था कि बालक का विकास उसके भीतर की प्राकृतिक प्रक्रिया के अनुरूप होना चाहिए। रूसो ने अध्यापक केंद्रित शिक्षा की तुलना में बाल केंद्रित शिक्षा का समर्थन किया। प्रयोजनवादी (प्रौग्मेटिज्म) चिन्तन जिसके प्रमुख विचारक विलियम जेम्स माने जाते हैं, उनका विचार है कि मनुष्य अपने आदर्श की स्वयं सृष्टि करता है। कोई विचार शास्वत नहीं होता। यदि किसी विचार का परिणाम हमारे लिए लाभप्रद है, तब वह हमारे लिए लाभप्रद होगा, अन्यथा नहीं। जीवन के लक्ष्य देश-काल, परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। व्यक्ति के परिवेश को समझना चाहिए और उससे समन्वय स्थापित करना चाहिए। पश्चिम में यथार्थवादी सोच भी विकसित हुआ, जिसकी मान्यता थी कि इन्द्रियों द्वारा जो हम देखते और अनुभव करते हैं, वह सत्य है। इस विचार के लिए भौतिक जड़-जगत ही सत्य है। विजित देशों की शिक्षा पर इन प्रतिमानों का प्रभाव रहा।

यह आदर्श की बात है कि जिन रूपों में मानव एकता, मानव समानता और विश्व-बन्धुत्व का भाव है तथा जो प्रारम्भ से ही मनुष्य, समाज और ज्ञान के संबंधों को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा व्यक्ति समष्टि और परमेष्टि में संतुलन, तालमेल तथा एकत्वभाव देखते हैं, उस शिक्षा दर्शन को नगण्य और विचारों के बीच भारतीय शिक्षा के मूल तत्वों को समझना केवल अकादमिक अपरिहार्यता ही नहीं है, अपितु मानव समाज में शिक्षा की व्यापक और उदार भूमिका को समझने के लिए आवश्यक भी है। भारतीय शिक्षा, भारतीय दार्शनिक चिन्तन से अनुप्राणित है, जो मूलतः आध्यात्मिक है। भारतीय दार्शनिक चिन्तन की मान्यता है कि व्यक्ति का स्थूल और भौतिक रूप नश्वर और जड़ है। उसका वास्तविक रूप चित् आत्मा स्वरूप है। आत्मातत्व अखण्ड तथा दिग्काल से अनविच्छिन्न और व्यापक है। इसलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एकात्मकता का भाव है, सब अभेद और एक रस हैं।

प्राचीन समय में इस तत्वज्ञान की प्राप्ति के केन्द्र गुरुकुल थे, जहाँ गुरु के साथ शिष्य रहकर शिक्षा अध्ययन करते थे। शिष्य के लिए गुरु सर्वोपरि था, सभी के साथ समानता का व्यवहार था। शिक्षा का धन से कोई संबंध नहीं था। शिक्षा खरीदी नहीं जाती थी। शिष्य में समर्पण, त्याग और सेवा भाव रहता था। गुरु का व्यवहार निस्प्रद और ममत्व से पूर्ण हुआ करता था। श्रवण, मनन, निदिध्यासन शिक्षा प्राप्ति की प्रक्रियाएं थीं। ब्रह्मचर्य और नित्यकर्म का पालन इसके अनुशासन थे। राज्य अथवा राजा के हस्तक्षेप से मुक्त गुरुकुल, गुरु के इच्छा के अनुसार चलते थे। प्राचीन काल में तक्षशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय भी थे, जहाँ अध्ययनरत शिष्यों की संख्या हजारों में थी। विश्वविद्यालय आकार में गुरुकुलों से विशाल थे। विश्व के अन्य देशों के छात्र भी वहाँ अध्ययन के लिए आते थे। वहाँ के आचार्यों का सम्मान विश्वव्यापी था। इस व्यवस्था में शिक्षा का धन से कोई संबंध नहीं था। अनुशासन और ज्ञान के प्रति समर्पण ही वहाँ शुल्क का रूप था। राज्य का हस्तक्षेप भी नहीं था। राजा इस बात से गौरवान्वित होता था कि उसके राज्य में विश्वविद्यालय हैं, श्रेष्ठ गुरु और आचार्य हैं। भारतीय शिक्षा सदैव राज्य के दबाव और हस्तक्षेप से मुक्त रही।

भारतीय शिक्षा मूल्यपरक है। यहाँ मूल्यपरक शिक्षा केन्द्रित मर्म है। मूल्य व्यक्ति और उसके सामाजिक जीवन से उद्भुत विचार और व्यवहार के मापक आधार हैं। जिनका निर्धारण समाज की सांस्कृतिक मान्यताओं और दार्शनिक विचारों से होता हैं मूल्य ऐसा आधार प्रस्तुत करते हैं, जिनके द्वारा हम उचित अनुचित का बोध करते हैं। कालान्तर में ये मूल्य समाज और व्यक्ति के स्वरूप को निर्मित करते हैं तथा उसकी पहचान बनाते हैं। संस्कृति स्वयं मूल्य पर आधारित धारणा है और उनका संबर्धन करने की भूमि तैयार की जाती है।

आज शिक्षा में सबसे बड़ा संकट मूल्यों का है। पिछले पांच-छः दशकों में प्रौद्योगिकी, संचार और तकनीकी प्रगति के साथ ही उदारीकरण और भूमंडलीकरण का युग प्रारम्भ हुआ है, जिसके कारण विश्व में एक नया वर्ग तथा उसकी नई सोच और जीवन शैली विकसित हुई है। यह जीवन शैली इस वर्ग को अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, भाषा, परम्परा, आचार-विचार पंचाँग और इतिहास से काट रही है। यह भी डर है कि कहीं आगे चलकर यह वर्ग अपनी पहचान ही न खो दे। ऑल्विन टाफलर ने अपनी पुस्तक फ्यूचर शॉक में इस संभावना की चर्चा विस्तार से की हैं। इसी प्रकार थियोडोर रोजेक ने अपनी पुस्तक 'द मेकिंग आफ ए काउन्टर कल्चर' में कहा है कि 'वेबसाइट, जेट और

अश्लील फिल्मों के व्यापक प्रसार ने मानव समाज की चूलें हिला दी हैं। तंत्रशाही ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दे डाला है जिसका संबंध मात्र दैहिक समागम हो गया है।'' भारतीय शिक्षा मूल्य-परक ही नहीं संस्कार युक्त भी है। शिक्षा, संस्कार और व्यक्ति के व्यक्तित्व की संकल्पना के साथ जुड़ी है। संस्कारों के साथ शिक्षा का जुड़ाव भारतीय शिक्षा प्रणाली को अन्य शिक्षा प्रणालियों से अलग करता है। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली संस्कारों पर जोर नहीं देती वह इसके प्रति तटस्थ हैं। उसकी शिक्षा में संस्कारों की वह अवधारणा नहीं है जो भारत में है। संस्कार व्यक्ति के सांस्कृतिक उन्नयन के साथ जुड़े रहते हैं। प्राय: आम भारतीय संस्कारित व्यक्ति को शिक्षित व्यक्ति से अधिक श्रेष्ठ मानता है। संस्कार की तात्विक और मनोवैज्ञानिक विवेचना न करते हुए सामान्य व्यवहार में यह कहा जा सकता है कि संस्कार व्यक्ति के स्वभाव, व्यवहार, पसन्दगी, नापसन्दगी तथा परिस्थितिजन्य अवसरों पर व्यक्ति की प्रतिक्रिया के तौर तरीकों और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस रूप में संस्कार का अर्थ है मानव के जीवन के उन्नयन के लिए निर्धारित मूल्यों के अनुसार जीवन को ढालने की विधि का क्रियान्वयन। शिक्षा व्यक्ति को संस्कारित करने की प्रक्रिया है। छात्र में नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान भाव, चारित्रिक पवित्रता और आचरण की शुद्धता को विकसित करने के लिए व्यक्ति की मानसिक और व्यावहारिक तैयारी में संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके लिए संस्कारयुक्त आचार्यों के महत्व को भी स्वीकार किया गया है।

वर्तमान समय में शिक्षा संस्थाओं में जो परिवेश विकसित हो रहा है, उसमें नैतिक वर्जनाएं और व्यवहार ध्वस्त हो रहे हैं, जो सर्वेक्षण किये जा रहे हैं तथा जो उनके परिणाम आ रहे हैं, वे भारतीय संदर्भ में ही नहीं बल्कि वैश्विक संदर्भ में भी भयावह हैं। वह हिंसक, अक्रामक और अनैतिक वातावरण को विकसित कर रहे हैं। कुछ समय पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका में एक सर्वे प्रकाशित हुआ था– जिसका शीर्षक 'पानी गलत और सही में अंतर क्यों कर पाता।' उस सर्वे से जो परिणाम प्रकाशित हुए, उसमें कहा गया है कि शिक्षण संस्थानों में जो परिवेश विकसित हो रहा है, वह किसी भी रूप में स्वस्थ नहीं है। छात्र अपने साथ हथियार लेकर आते हैं। आज स्थिति यह है कि छात्रों में पाश्चात्य संस्कृति विकसित हो रही है और किट्टी पार्टियों का फैलाव हो रहा है। सही शिक्षा के अभाव में समाज के हिंसक होने और आधारभूत सामाजिक संस्थाओं जैसे – परिवार, विवाह आदि टूटने का डर बढ़ रहा है। नैतिक मूल्यों में गिरावट आ रही है। ऐसे समय में विश्व का भारत की ओर देखना स्वाभाविक है। भारत के पास जीवन को देखने की एक नैतिक दृष्टि है जो शिक्षा और संस्कृति में परिलक्षित होती है।

वर्तमान शिक्षा की आलोचना का बहुत बड़ा कारण यह है कि वह व्यक्तिगत होती जा रही है। शिक्षा अच्छे कैरियर के लिए छात्र को योगय बना रही है, प्रतियोगी भावना विकसित कर रही है, पर छात्र में सामाजिक दृष्टि, सामाजिक सोच और समाज के प्रति कर्त्तव्यों को विकसित नहीं कर पा रही है। यह शिक्षा का अधूरापन है। प्रतिबद्धता और समाजोन्मुखी जीवन भारतीय शिक्षा की पहचान हैं। जब हम समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को जानेंगे तभी अपनी सीमित सोच और जीवन के छोटे से दायरे से बाहर निकल सकेंगे। शिक्षा की ग्राह्यता व्यक्तिगत है, पर उसके कारण विकसित गुण, शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग समाजपरक है। यदि ऐसे नहीं होता है और व्यक्ति शिक्षा द्वारा प्राप्त शक्ति और सामर्थ्य का प्रयोग स्वयं अपने लिए करता है, तब वह व्यक्ति स्वार्थी, स्वकेन्द्रित और समाज के लिए भार बन जाता है। शिक्षा मुक्ति का मार्ग है, लोक कल्याण हेतु मानव मात्र के हित के लिए ज्ञान के विस्तार का विचार भारतीयों के संस्कार में है। ज्ञान ही भय, दु:ख, शोक, दरिद्रता और अभाव से मुक्ति दिलाता है। इसलिए ज्ञान को मनुष्य की आध्यात्मिक प्रकृति माना गया है। ज्ञान मनुष्य के अन्दर ही है। भारतीय आत्मा को ब्रह्म का अंश मानते हैं और ब्रह्मा का स्वरूप चैतन्य है। अत: आत्मा का स्वरूप भी चेतना हैं सब ज्ञान इसी में है। शिक्षा की इस चेतना पर जो अज्ञान का आवरण छा गया है, उसे अलग करने का कार्य करती है। हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जो ज्ञान की ओर ले जाये। इसीलिए कहा गया है कि ''सा विद्या या विमुक्तये''। अर्थात विद्या वह है, जो मुक्ति दिलाए। शिक्षा जब व्यक्ति से जुड़ती है तो वह स्वभाविक रूप से उसके व्यक्तित्व से भी जुड़ती है, भारतीय शिक्षा व्यक्तित्व को गढ़ती है। सामान्यत: व्यक्तित्व को व्यक्ति के स्वभाव, मनोदैहिक गुण, धर्मों, विशेषताओं, न्यूनताओं आदि का समुच्चय माना जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विचार के संदर्भ में व्यक्ति शक्ति की आन्तरिक और वाह्य शक्तियों का घनीभूत रूप है। पर व्यक्तित्व के संदर्भ में भारतीय संकल्पना व्यापक है। भारतीय चिंतन में व्यक्तित्व को जीवात्मा का रूप माना गया है। व्यक्ति का व्यक्तित्व पंचकोष का संश्लिष्ट रूप है, ये पाँच कोष हैं– (1) अन्नमय कोष (2) प्राणमय कोष (3) मनोमय कोष (4) विज्ञानमय कोष (5) आनन्दमय कोष।

कोष को आवरण या भंडार भी कह सकते हैं। शिक्षा की भूमिका इस पाँच आवरणों को ज्ञान द्वारा समझाते हुए क्रमश: हटाने की अनुभूति है, यही विराट का साक्षात्कार है और इसकी अनुभूति ही व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता है।

शिक्षाविद् सम्प्रति भारतीय शैक्षिक चिंतन की विडंबना है कि मनुष्य, प्रकृति, ज्ञान संबंधी कोई प्रतिरूप आदर्श विकसित नहीं कर सके हैं, जो शिक्षा सिद्धांतों को प्रभावित

कर सके। हम भारतीय शिक्षा का कोई मॉडल विकसित नहीं कर सके हैं। वर्तमान समय में शिक्षा क्षेत्र में वैश्वीकरण तकनीकी और दूरसंचार क्रांति के कारण जो नये संदर्भ और समीकरण विकसित हो रहे हैं उनके परिणाम स्वरूप शिक्षाविदों और विचारकों सहित जनसाधारण को भी इस बात पर विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है कि भारत को अपनी शिक्षा के मूलतत्वों के संबंध में गहन विचार करना होगा था उससे अनुप्राणित होकर शिक्षा के प्रतिमान स्थापित करने होंगे। भारत का एकात्मवादी शाश्वत चिंतन, संस्कृति से जुड़ी मूल्याधारित, संस्कारयुक्त शिक्षा समानोन्मुखी दृष्टि से युक्त भारतीय प्रतिरूप आदर्श शिक्षा के आधार हैं। इसके लिए प्रचलित अध्यापन पद्धति को ध्वस्त करके दूसरी कोई पद्धति विकसित करने की आवश्यकता नहीं है। पर गुरुकुल भावना को समझने और उसे शिक्षा के साथ जोड़ने की आवश्यकता है, जो वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रतिबद्धता को विकसित करे और स्वाभिमान और आत्मविश्वास को जागृत कर सके तथा अपनी संस्कृति, सभ्यता, मिट्टी और मूल्यों के प्रति जुड़ाव पैदा कर सके। इस दिशा में कई संस्थाओं ने पहल की हैं कई प्रयोग देश में चल रहे हैं, विद्या भारती के विद्यालय व्यापक स्तर पर इस दिशा में सक्रीय हैं। यह अनुभव में आ रहा है कि छोटे-छोटे प्रयोग, परिवेश और मानस को बदलते हैं और प्रतिमान को बनाते हैं। गीत, प्रार्थना, पारस्परिक संबोधन, भवन, परिसर, कक्ष आदि के नामकरण, चित्र रंगमंचीय कार्यक्रमों की प्रस्तुति अनुशासन और सामूहिक कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास, छात्रों के परस्पर संबंध पर सब मिलाकर एक मॉडल विकसित होता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति जहाँ प्रतिस्पर्धा, तनाव और समाज के प्रति तटस्थ भाव विकसित करती है, वहाँ आवश्यकता है ऐसे विद्यालयों की जो आत्मविश्वास, पारस्परिक सहयोग, सेवाभाव और प्रतिबद्धता को विकसित कर सके।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षा के मूल तत्वों की प्रासंगिकता और उपादेयता की महत्ता स्वयं सिद्ध हैं। आज विश्व बहुत बदल गया है। ज्ञान के क्षेत्र में भी बहुत विकास हो चुका है। हम अपनी वैशिष्टताओं के गुणगानों के सहारे ही नहीं रह सकते। समय का भी एक दबाव होता है तथा एक प्रवाह होता है। अत: हमें उसकी तीव्रता को समझना पड़ेगा। यहाँ केवल एक विचारणीय प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है। भारत ने ज्ञान को व्यापार से जोड़ने में कभी विश्वास नहीं किया। परिणामत: हम इस ओर उदासीन भी रहे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द बसु ने मार्कोनी (इटली) से पहले वायरलेस का आविष्कार किया, पर आज यदि इन्हीं विचारों

में हम जिएंगे तो घाटे में रहेंगे। आज का युग ज्ञान का युग है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक रघुनाथ मासेलकर के अनुसार, ''ज्ञान नामक नये तापनाभिकीय हथियारों से ज्ञान बाजार में भविष्य का युद्ध लड़ा जाएगा।'' स्पष्ट है कि ज्ञान ही पूँजी है और ज्ञान ही शक्ति है। हमें इस ओर तीव्रता से सोचना होगा। हमारे देशी ज्ञान को विश्व के कई लोग चतुराई से हमें अंधेरे में रखकर पेटेंट करा रहे हैं। हम हल्दी के पेटेंट की लड़ाई जीत चुके हैं। अब हाल ही में अमेरिका के एक नागरिक अलवर्ट क्ले ने अमेरिका में वैदिक गणित की एक गणितीय गणना के लिए अमेरिकी पेटेंट की माँग की है। यदि यह पेटेंट होता है तो इसका दूरगामी परिणाम अगले कुछ वर्षों में हम पर पड़ेगा, जो आर्थिक और ज्ञानात्मक दोनों प्रकार का होगा।

अत: अपनी बौद्धिक संपदा की रक्षा के लिए पेटेंट संबंधी जानकारी और सजगता की आवश्यकता है हमें इस पक्ष को भी महत्व देन होगा। आज भारतीय शिक्षा को अपनी अन्तर्निहित विशेषताओं के रक्षण और विकास के लिए वर्तमान की समसामयिक शैक्षिक धाराओं के साथ संवाद और उसके प्रभावों को आत्मसात करते हुए अपनी पहचान को बनाये रखने की क्षमता विकसित करनी होगी, ताकि हम अपनी बौद्धिक संपदा की रक्षा कर सकें।

### *संदर्भ*

यूनेस्को (1996) : रिपोर्ट इंटाईल्ट्ड '*लर्निंग द ट्रेजर्स विदइन*'

सिंह जगदीश एवं के.एन. सिंह (2003) : '*भूमंडलीकरण की माया, कहीं धूप कहीं छाया*' संविकाश संदेश, वाल्यूम 13, पृ. 1–8

दूबे श्यामचरण, (1998) : '*शिक्षा, समाज एवं भविष्य*', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2।

सिंह सुनीता, (2006) : '*प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था*', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

विद्याभारती, (2011) : '*राष्ट्रीय चिंतन बैठक कुरुक्षेत्र*'

सिंह नरेन्द्रजीत, (2010) : '*तजोमय भारत*' विद्याभारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) : मा.सं.वि.मं., भारत सरकार, नई दिल्ली

कुंजन आर.सी. (1950) : '*सम अस्पैक्ट आफ एजुकेशन इन एन्सिऐंट इंडिया*' द राइजर लाइब्रेरी

सिंह सुनीता, (2011) : '*शिक्षा का भारतीयकरण – एक समालोचनात्मक अध्ययन*', संविकाश संदेश, वाल्यूम 19, पृ. 59–64

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

# मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत का अध्ययन

**सूफिया नाज़नीन***

***सारांश***

*प्रस्तुत लघु शोध में मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारणों और उन्हें दूर करने के उपायों के संदर्भ में वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य है मुस्लिम बच्चों की शैक्षिक समस्याओं के कारणों एवं शैक्षिक विकास हेतु आवश्यक उपायों के संदर्भ में वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का ज्ञान प्राप्त करना। इस अध्ययन हेतु वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के समग्र में से 150 मुस्लिम बुद्धिजीवियों (स्त्री/पुरुष) को सोद्देश्य प्रतिदर्शन विधि द्वारा चयन किया गया है। बुद्धिजीवियों के अभिमतों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ''मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत जानने हेतु अभिमतावली'' नामक उपकरण का निर्माण किया गया और बुद्धिजीवियों के अभिमत अभिमतावली के पदों के संबंध में सहमत, असहमत और तटस्थ के आधार पर ज्ञात किये गये। तत्पश्चात तीनों विकल्पों की प्रत्येक पद पर आवृत्ति ज्ञात करके काई वर्ग परीक्षण के माध्यम से अभिमतावली द्वारा प्राप्त उत्तरों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर .01 सार्थकता स्तर पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया गया और यह निष्कर्ष पाया गया कि वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों की राय में मुस्लिम बच्चों की प्रमुख शैक्षिक समस्याएँ हैं – निम्न पंजीकरण, अपव्यय एवं अवरोधन। इन समस्याओं के लिए उत्तरदायी कारक हैं – निम्न आर्थिक स्थिति, उच्च स्तरीय उर्दू माध्यम की शिक्षण संस्थाओं का अभाव, मदरसा बोर्ड की परम्परागत प्रकृति, खुली शिक्षा व्यवस्था के बारे में अनभिज्ञता, शिक्षण सामग्रियों का अभाव आदि। बुद्धिजीवियों की राय में मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने एवं उनके उत्तरोत्तर शैक्षिक विकास हेतु विद्यालय स्तर से शुरुआत की जाय। विद्यालयी शिक्षा में उनके पंजीकरण में वृद्धि अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने*

* C/o मोहम्मद अशरफ (एडवोकेट) एस 19/113 ए, वरुणा पुल, वाराणसी–221002, उत्तर प्रदेश

*हेतु आवश्यक उपायों जैसे इन बच्चों के अभिभावकों के रोजगार साधनों में वृद्धि हेतु सरकारी प्रयास, राज्य सरकारों द्वारा उच्च स्तरीय उर्दू माध्यम के विद्यालयों की स्थापना, मदरसा बोर्ड का आधुनिकीकरण, प्रशिक्षित शिक्षकों, शिक्षण सामग्रियों की व्यवस्था, निष्पक्ष मूल्यांकन, अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था आदि को अपनाया जाय।*

## अध्ययन की पृष्ठभूमि

शिक्षा, ज्ञान, कौशल, मस्तिष्क एवं चरित्र के विकास एवं प्रशिक्षण की प्रक्रिया है (*भावानुवाद*, ऐग्नेस, 2001, पृ. 453)। यह एक क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित क्रिया है, जिसके माध्यम से मानव के ज्ञान को एक निश्चित दिशा प्रदान की जाती है एवं उसके निरन्तर अभ्यास द्वारा ज्ञान को प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षित ज्ञान, कौशलों और अभिक्षमताओं के विकास में सहयोग देता है जो मानव के मस्तिष्क और चरित्र को भी विकसित करता है। यह विकसित मस्तिष्क और चरित्र क्रमशः स्वतंत्र एवं उदार चिंतन एवं सद्‌गुणों के द्योतक हैं।

अधिगम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो मनुष्य की क्रियाशीलता को विकसित करने के लिए, उसे आवश्यक निपुणता अर्जित करने योग्य बनाती है। दूसरे शब्दों में, अधिगम स्थायी व्यवहार परिवर्तन की प्रक्रिया है।

बालक घर एवं समाज में अपने बड़ों से कुछ न कुछ सीखता रहता है। खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि बातों को वह अपने परिवार में सीखता है, तो वहीं सामाजिक संबंधों शिष्टाचार, वार्तालाप के नियमों को वह समाज से सीखता है। आज मनुष्य ने कला, विज्ञान, इतिहास विभिन्न साहित्यों में इतने अधिक अनुभव एकत्र कर लिये हैं कि किसी एक मेधावी व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि वह जन्म से लेकर मृत्यु प्रर्यन्त कठोर परिश्रम करके इन सभी का परिचय प्राप्त कर ले। अतः ऐसी दशा में मनुष्य के अनुभवों को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करके विषय सामग्री को सीमित, निश्चित एवं स्तरीकृत करके, छात्र की आयु एवं योग्यतानुसार पाठ्यक्रम को व्यवस्थित करना आवश्यक हो जाता है। इसी कारणवश विद्यालयी शिक्षा का प्रबंध किया जाता है।

अन्य धर्मों के समान ही इस्लाम धर्म में शिक्षा को विशेष प्राथमिकता हासिल है। इस धर्म में विद्यालयी शिक्षा के लिए मकतब एवं मदरसों की स्थापना की जाती है। अल्लाह के पैगम्बर (ऐसे व्यक्ति जिनका ज्ञान, धर्म, नैतिकता, आचरण, शरीयत (आचारशास्त्र) के अनुरूप हो) हजरत मोहम्मद (स.) पहले शिक्षक और सहाबा (पैगम्बर के साथ रहने और उनको मानने वाले) उनके शिष्य थे। यह माना जाता है कि 40 वर्ष की आयु में जब हजरत मोहम्मद (स.) गार-ए-हेरा की तन्हाई में ध्यानमग्न थे, उस समय

फरिश्तों (ईशदूत) के सरदार हजरत जिबरील (अल.) आये और उनसे कहा– 'इकरा, जिसका अर्थ है – पढ़ो। *(भावानुवाद, कासमी (सम्पा.) 2006, पृ. 25)*।

इस्लामी शिक्षा दर्शन का प्रमुख स्रोत कुरआन है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– पढ़ना, उच्चारण करना *(राय 2005, पृ. 200)*। कुरआन के अनुसार दिव्य प्रकटीकरण और पैगम्बरों को मनुष्य के पास भेजने का वास्तविक उद्देश्य ज्ञान का सम्प्रेषण करना था। ज्ञान और शिक्षा पर इस्लाम में विशेष ध्यान दिया गया है, दोनों ही इस्लाम धर्म के अभिन्न अंग हैं। अल्लाह चाहता है कि उसका प्रत्येक अनुयायी पूर्ण शिक्षित हो ताकि वह प्रज्ञा और बौद्धिक ज्ञान का विकास कर सके। इस्लामी शिक्षा दर्शन न तो मस्तिष्क के प्रशिक्षण को आत्मा से पृथक करता है और न ही उत्तम नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों को आत्मसात किये बिना ज्ञान के आदान-प्रदान को मान्यता प्रदान करता है। यहाँ तक कि इन सिद्धांतों के बिना ज्ञान के अर्जन को व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हानिकारक माना गया है।

अतः स्पष्ट है कि इस्लाम धर्म अपने अनुयायियों (मुसलमानों) को शिक्षा ग्रहण करने और दूसरों तक पहुँचाने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। परन्तु इस स्वतंत्रता के बावजूद वर्तमान समय में मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति बहुत निम्न है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। यहाँ जनता के शैक्षिक विकास हेतु दिन-प्रतिदिन प्रयत्न हो रहे हैं, फिर भी यहाँ मुस्लिम जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ी अवस्था में है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में मुस्लिम साक्षरता दर 59 प्रतिशत है, वहीं उत्तर प्रदेश में मुस्लिम साक्षरता 47.8 प्रतिशत है। *(ओझा, 2010, पृ. 22, 38)*

सच्चर समिति (2005-06) की रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2001 में मुसलमानों की साक्षरता 59.1 प्रतिशत थी जो राष्ट्रीय औसत 65.3 प्रतिशत से कम थी। नगरीय क्षेत्रों में मुसलमानों की निरक्षरता का स्तर 70.1 प्रतिशत था जो राष्ट्रीय औसत 11 प्रतिशत से कहीं अधिक था। मुसलमानों का सामाजिक-आर्थिक स्तर दलितों से भी निम्न है। 6-14 वर्ष की आयु के 25 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे या तो विद्यालय जाते ही नहीं या विद्यालय छोड़ देते हैं। इन विद्यार्थियों की अपव्यय दर प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर बहुत अधिक है। विद्यालय जाने की आयु में 3 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे ही मदरसे जाते हैं। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 56, 57)*

यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार एवं स्वतंत्रताओं के माध्यम से मुस्लिम बच्चों की शिक्षा में विकास देखने को मिला है, तथापि इन सुविधाओं के बावजूद भारत में मुस्लिम बच्चों का शैक्षिक विकास उस स्तर का नहीं है, जैसा कि अन्य

वर्गों में देखने को मिलता है। प्रस्तुत लघु शोध के माध्यम से शोधकर्त द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास के लिए किन–किन दृष्टिकोणों पर विचार किया जाना चाहिए और इन दृष्टिकोणों पर बुद्धिजीवियों के अभिमत किस प्रकार प्रभाव डालते हैं। साथ ही मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास में कमी हेतु तीन मुख्य बिन्दुओं – पंजीकरण, अपव्यय, अवरोधन के कारणों को दूर करने के उपायों के संबंध में बुद्धिजीवी वर्ग क्या अभिमत रखता है, जिनके माध्यम से इन बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु आवश्यक उपायों को अपनाया जा सके और उन्हें विकास की धारा में समाहित किया जा सके।

बुद्धिजीवियों के अभिमत को चर के रूप में इसलिए रखा गया है, क्योंकि वे समाज के विचारशील अग्रणी, प्रबुद्ध तथा अनुभवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, नीतियों, कार्यक्रमों के निर्धारण में इनके विचारों को विशेष महत्व दिया जाता है।

## संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेषज्ञ शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्त्ता को पूर्व सिद्धांतों और शोधों से भलीभाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में सैद्धांतिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है, जिसके माध्यम से शोधकर्त्ता यह निश्चित कर सकता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शोध से संबंधित विषयों पर विचारणीय कार्य पहले हुआ है या नहीं?

सभी देशों में अल्पसंख्यक वर्ग को पिछड़ा हुआ माना जाता है। इनकी शैक्षिक आवश्यकताएँ बहुसंख्यक वर्ग के मामले में बहुत कुछ भिन्न होती हैं। सरकार अल्पसंख्यक वर्ग, जो कि बाकी जनसंख्या में अपनी पहचान बनाने के लिए आतुर है की सुरक्षा के लिए विशेष कदम उठाती है। कुछ समय से अल्पसंख्यक वर्ग की शिक्षा शोध के महत्वपूर्ण विषय के रूप में पहचानी गयी है। सरकार निरन्तर प्रयासरत है कि सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में इस वर्ग की भागीदारी को बढ़ाया जाये, ताकि वे स्वयं के इस समाज का हिस्सा समझ सकें। इस संदर्भ में अल्पसंख्यक वर्ग विशेषकर मुस्लिम वर्ग एवं अन्य पिछड़े वर्ग की शिक्षा हेतु किये गये कुछ भारतीय एवं विदेशी शोध कार्य निम्नलिखित हैं–

गिरिजा (1980) द्वारा शाब्दिक, अशाब्दिक बुद्धि, अध्ययन आदतों, कौशल, व्यक्तित्व मूल्य, अभिप्रेरणा, उत्तेजना आदि कारकों का एक व्यावसायिक महाविद्यालय के सामान्य

एवं पिछड़े छात्रों की शैक्षिक एवं अशैक्षिक उपलब्धियों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया और उनका सकारात्मक प्रभाव देखा गया। *(भावानुवाद, बुच, 1991, पृ. 1424)*

बासु (1981) द्वारा तिब्बत और पूर्वी पाकिस्तान के पिछड़े हुए शरणार्थी बच्चों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला गया कि दोनों समूह के पिछड़े बच्चों के व्यक्तित्व में अनावश्यक अहं का निर्माण हुआ एवं उनमें स्वायत्तता जैसे शीलगुण मौजूद हैं। *(भावानुवाद, बुच, 1991, पृ. 1424)*

देशपांडे (1984) द्वारा पिछड़े छात्रों को भारत में प्रदत्त शैक्षिक सुविधाओं की सूचना एकत्र कर इन सुविधाओं के प्रति पूना के महाविद्यालयों के शिक्षकों और छात्रों की अभिवृत्ति का पता लगाकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि अधिकांश छात्र–छात्राओं को इन सुविधाओं की जानकारी थी और इन सुविधाओं के प्रति उनकी अभिवृत्ति में कोई अन्तर नहीं था। परन्तु सामान्य छात्र और 50 प्रतिशत शिक्षक इन सुविधाओं के पक्षधर नहीं थे। *(भावानुवाद, बुच, 1991, पृ. 1429)*

परवीन (1989) द्वारा उन्नीसवीं सदी के कुछ प्रमुख मुस्लिम शिक्षाविदों के शैक्षिक आन्दोलनों का ज्ञान प्राप्त कर उनका तत्कालीन एवं आधुनिक भारतीय शिक्षा पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। *(परवीन, 1989, पी–एच.डी. शोध, का.हि.वि.वि., पृ. 115)*

सिंह (1992) द्वारा मध्यकालीन भारत में इस्लामी शैक्षिक प्रचलनों का भारतीय शैक्षिक प्रचलनों पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। *(सिंह, 1992, पी–एच.डी. शोध, का.हि.वि.वि., पृ. 125)*

करीम (1991) द्वारा भारतीय मुसलमानों के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारणों को जानने हेतु एक अध्ययन किया गया और निष्कर्ष में पाया गया कि भारतीय मुसलमानों का सामान्य आर्थिक–सामाजिक पिछड़पन ही उनके शैक्षिक पिछड़ेपन का कारण है। *(भावानुवाद, बुच, 1997, पृ. 1646)*

सिरोही (1991) द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा अल्पसंख्यक प्रबंधन वाले विद्यालयों को दी जाने वाली व्यावसायिक निर्देशन सेवाओं की उपयोगिता और इन सेवाओं की प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों का अध्ययन किया गया, जिसमें यह ज्ञात हुआ कि समय की कमी और प्रशासनिक प्रोत्साहन की निम्न स्थिति के बावजूद इन विद्यालयों में अध्यापकों द्वारा अपने स्तर पर निर्देशन सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। *(भावानुवाद, बुच, 1997, पृ. 228)*

मंडल (1992) द्वारा पश्चिम बंगाल के मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन किया गया और पाया गया कि पश्चिम बंगाल में परंपरागत सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण, पर्दा-प्रथा, परंपरागत मूल्य और जीवन शैली के कारण मुस्लिम बच्चों में निरक्षरता और अपव्यय का स्तर अधिक और पंजीकरण कम था। *(भावानुवाद, बुच, 1997, पृ. 1661)*

जैन (1992) द्वारा बम्बई में अल्पसंख्यकों के शैक्षिक अधिकारों के संदर्भ में एक स्वतंत्र अध्ययन किया गया और ज्ञात किया गया कि अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाएँ वर्ग संसाधनों की गतिशीलता के माध्यम से सार्वभौमिक शिक्षा के राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति हेतु योगदान करती हैं। *(भावानुवाद, बुच, 1997, पृ. 1642)*

जबीं (1996) द्वारा विभिन्न आर्थिक स्थिति वाले मुस्लिम अभिभावकों की मुस्लिम महिला शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति और उनकी भिन्न अभिवृत्ति के कारणों का अध्ययन किया गया और निष्कर्ष पाया गया कि भिन्न आर्थिक स्थिति वाले अभिभावकों की अभिवृत्ति में अन्तर था और यह अन्तर उनकी आर्थिक स्थिति में भिन्नता के कारण था। *(भावानुवाद, सिक्स्थ सर्वे, 2005, पृ. 401)*

रवातून (1996) द्वारा अल्पसंख्यक मुस्लिम विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति और बहुसंख्यक हिन्दू और अल्पसंख्यक मुस्लिम विद्यार्थियों की विज्ञान की उपलब्धियों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और यह निष्कर्ष पाया गया कि बहुसंख्यक हिन्दू विद्यार्थियों की तुलना में अल्पसंख्यक मुस्लिम विद्यार्थी विज्ञान और उसकी उपलब्धियों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं। *(भावानुवाद, सिक्स्थ सर्वे, 2005, पृ. 401)*

नेहवी एवं लिड्डू (1996) द्वारा परंपरा बनाम आधुनिकीकरण के प्रति कश्मीर की शिक्षित मुस्लिम महिलाओं की अभिवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक अध्ययन किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि शहरी, उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाली एवं विज्ञान विषय से जुड़ी महिलाओं में परम्परा और प्रथाओं के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति थी और गरीब, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाली एवं कला व सामाजिक विषय से जुड़ी महिलाओं में आधुनिकीकरण के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति थी। *(भावानुवाद, सिक्स्थ सर्वे, 2005, पृ. 401)*

**राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (11.12.2004)** द्वारा अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर एक राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया गया, जिसका उद्देश्य भारत के विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के बच्चों की शिक्षा एवं उनकी पाठ्यक्रम

संबंधी समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करना था ताकि राज्यों, संघ शासित क्षेत्रों, गैर-सरकारी संगठनों को इनकी शिक्षा के विकास हेतु एवं नीतियाँ बनाने हेतु दिशा-निर्देश दिये जा सकें। *(भावानुवाद, सिक्स्थ सर्वे, 2005, पृ. 401)*

सच्चर समिति (2005-06) जिसे भारत सरकार द्वारा मुस्लिम समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और शैक्षिक दशा पर विचार करने के लिए 9 मार्च 2005 को न्यायमूर्ति राजेन्द्र सच्चर की अध्यक्षता में छः सदस्यीय समिति कोगठित किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट 17 नवंबर, 2006 को प्रस्तुत की, उसने मुसलमानों की शैक्षिक स्थिति के संदर्भ में जो निष्कर्ष निकाला वे निम्नलिखित हैं-

- मुस्लिम शिक्षा की कमी का प्रमुख कारण शिक्षा की औपचारिक रोजगार साधनों के लिए आवश्यक न माना जाना।
- मुस्लिम बहुल इलाकों में प्राथमिक स्तर के विद्यालय बहुत कम हैं।
- 6-14 वर्ष के 25 प्रतिशत बच्चे या तो विद्यालय बीच में छोड़ देते हैं या कभी विद्यालय गये ही नहीं। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 49)*
- ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित जवाहर नवोदय विद्यालयों में मुस्लिम भागीदारी असंतोषजनक है। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 53)*
- मुस्लिम सम्प्रदाय में हस्त कौशल रोजगार का साधन होने के बावजूद इनके पास तकनीकी प्रशिक्षण की कमी है।
- अधिककतर महाविद्यालयों में 25 में 1 स्नातक और 250 में 1 परास्नातक विद्यार्थी मुस्लिम हैं। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 55)*
- विद्यालय जाने वाली आयु में 3 प्रतिशत मुस्लिम छात्र ही मदरसे जाते हैं।
- उर्दू माध्यम के विद्यालयों में निम्न पंजीकरण का कारण ऐसे विद्यालयों की प्रारम्भिक स्तर पर निम्न स्थिति है।

समिति ने इन स्थितियों से निपटने के लिए जो सुझाव दिये वे निम्नलिखित हैं।

- समान अवसर आयोग का गठन किया जाये, जो पिछड़े वर्ग की समस्याओं का कारण जानने का प्रयत्न करे।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा ऐसे नियम प्रोत्साहित किये जायें जिनके द्वारा महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में छात्र जनसंख्या का आवंटन उनकी भिन्नता को ध्यान में रखकर हो। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 240)*
- नियमित विश्वविद्यालय और स्वायत्त महाविद्यालयों में सामाजिक-धार्मिक श्रेणी के अत्यधिक पिछड़े वर्ग को प्रवेश की सुविधा प्रदान की जाय और इसके लिए वैकल्पिक नियम बनाये जायें।

- अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों को उनकी स्थिति के अनुकूल शुल्क पर छात्रावास की सुविधा प्रदान की जाय। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 242)*
- ऐसे नियम बनाये जायें जिससे मदरसे उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद से जुड़ सकें और इन मदरसों से शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाले छात्र नियमित शिक्षा से जुड़ सकें। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 245)*
- प्राथमिक शिक्षा छात्र की मातृभाषा में प्रदान की जाये और राज्य द्वारा उर्दू माध्यम के विद्यालय खोले जायें। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 248)*
- प्रतियोगी परीक्षाओं में अर्हता के लिए मदरसों की डिग्रियों को मान्यता प्रदान की जाय। *(भावानुवाद, सच्चर रिपोर्ट, 2006, पृ. 250)*

## ज्ञान के क्षेत्र में रिक्ति

समस्या से संबंधित साहित्यों के व्यापक सर्वेक्षण से प्राप्त ज्ञान समस्या हेतु आवश्यक ज्ञान का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण और दूर करने के उपायों के संदर्भ में बहुत ही कम अध्ययन किये गये हैं और जो अध्ययन किये गये हैं उनमें भी मुस्लिम बच्चों की शैक्षिक स्थिति, उनकी शैक्षिक प्रगति के संदर्भ में बुद्धिजीवी वर्ग विशेषकर मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों को जानने हेतु कोई प्रयास नहीं किया गया है। इस कारण उक्त क्षेत्र में ज्ञान की रिक्ति के फलस्वरूप प्रस्तावित समस्या का लघु शोध हेतु चयन किया गया है।

## शोध प्रश्न

ज्ञान के क्षेत्र में रिक्ति तथा मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत लघु शोध निम्नलिखित प्रश्नों पर आधारित किया गया है–

- मुस्लिम बच्चों की शैक्षिक समस्याओं के संदर्भ में वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत क्या हैं?
- बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु आवश्यक उपायों एवं प्रमुख नीतियों एवं कार्यक्रमों के संदर्भ में वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत क्या हैं?

## वर्तमान शोध की आवश्यकता

हम जानते हैं कि वर्तमान समय में भारत के आर्थिक विकास के साथ-साथ यहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक, धामिक एवं शैक्षिक विकास हुआ है, परन्तु इस विकास में मुस्लिम जाति का प्रतिशत अभी भी बहुत कम है। मुख्य रूप से इस लघु शोध के माध्यम से मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन हेतु उत्तरदायी कारणों और उन्हें दूर करने के उपायों के संदर्भ में मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों को जानने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि विद्यालयी शिक्षा में मुस्लिम बच्चों के निम्न पंजीकरण, अपव्यय एवं अवरोधन के कारण और उन्हें दूर करने के उपाय क्या-क्या हो सकते हैं?

प्रस्तुत लघु शोध के माध्यम से मुस्लिम बच्चों की शैक्षिक प्रगति हेतु वित्तीय पोषण, विद्यालयों में समुचित पर्यवेक्षण, शैक्षिक पर्यटन, पाठ्य सहगामी क्रियाओं, तकनीकी शिक्षा व खुली शिक्षा की व्यवस्था हेतु आवश्यक उपायों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह शैक्षिक विकास हेतु निर्मित नीतियों, कार्यक्रमों तथा उनकी सफलता के संदर्भ में मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का ज्ञान प्रदान करता है।

### प्रस्तुत समस्या का शीर्षक

प्रस्तुत लघु शोध का औपचारिक शीर्षक है ''मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत का अध्ययन''।

### समस्या के शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों की परिभाषाएँ

प्रत्येक शोधकर्त्ता/कर्तृ को शीर्षक में प्रयुक्त शब्दों को अवश्य ही परिभाषित करना चाहिए, जिससे सुस्पष्टता बनी रहे। इस निमित्त प्रत्येक शब्द का साहित्य आधारित अर्थ और इस लघु शोध में प्रयुक्त कार्यात्मक अर्थ दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है–

### मुस्लिम बच्चे

प्रस्तुत लघु शोध में मुस्लिम बच्चों से तात्पर्य इस्लाम धर्म को मानने वाले उन बालक-बालिकाओं से है, जिन्हें विद्यालयी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

### शैक्षिक विकास

प्रस्तुत लघु शोध में शैक्षिक विकास से तात्पर्य मुस्लिम बच्चों की शैक्षिक स्थिति में सुधार अर्थात् पंजीकरण में वृद्धि, अपव्यय एवं अवरोधन में कमी, उत्तरोत्तर कक्षाओं में प्रगति तथा गुणात्मक रूप से उनकी शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि से है।

### मुस्लिम बुद्धिजीवी

बुद्धिजीवी से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है जो पूर्ण शिक्षित हों और जो अपनी बौद्धिक क्षमता का प्रयोग ऐसे कार्यों में करते हों, जिन्हें वे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक महत्व को समझते हों। *(भावानुवाद, जेरी एवं जेरी, 2000, पृ. 304)*

प्रस्तुत लघु शोध में मुस्लिम बुद्धिजीवी से तात्पर्य ऐसे मुस्लिम व्यक्तियों (स्त्री एवं पुरुष) से है जो पूर्ण शिक्षित हों और अपनी बौद्धिक क्षमता के आधार पर सामाजिक,

सांस्कृतिक एवं शैक्षिक महत्व के कार्य करते हों। इस लघु शोध में मुस्लिम शिक्षक, अधिवक्ता, चिकित्सक, लेखक/लेखिका, जन प्रतिनिधि, शैक्षिक प्रबंधक, प्रशासक, समाज सेवक एवं स्वतंत्र चिंतक मुस्लिम बुद्धिजीवी के रूप में सम्मिलित किये गये हैं।

**अभिमत**

अभिमत एक ऐसा विश्वास है जो पूर्ण निश्चितता या सकारात्मक ज्ञान पर आधारित न हों, लेकिन व्यक्ति की स्वयं की सोच से सत्य, वैध या सम्भाव्य प्रतीत होता हो। *(भावानुवाद, ऐग्नेस, 2001, पृ. 1011)*

प्रस्तुत लघु शोध में अभिमत से तात्पर्य मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों की ऐसी प्रतिक्रियाओं से है, जिनसे उनका दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

**अध्ययन के उद्देश्य**

प्रस्तुत लघु शोध के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- मुस्लिम बच्चों की शैक्षिक समस्याओं के संदर्भ में वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का ज्ञान प्राप्त करना।
- मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु आवश्यक उपायों के संदर्भ में वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का ज्ञान प्राप्त करना।

**परिकल्पना**

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सामान्य रूप से एक ही शून्य परिकल्पना निम्नवत निर्मित की गयी–

मुस्लिम बुद्धिजीवियों का मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास संबंधित उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु बनाये गये अभिमत पदों के तीन विकल्प उत्तरों में .01 सार्थकता स्तर पर कोई अन्तर नहीं है।

**शोध विधि**

प्रस्तुत लघु शोध समस्या की विषय–वस्तु की प्रकृति वर्णनात्मक अनुसंधान की है। इस कारण इस लघु शोध हेतु विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

**समग्र**

प्रस्तुत लघु शोध हेतु उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के समस्त मुस्लिम बुद्धिजीवियों (पुरुष/महिला) को समग्र या जनसंख्या के रूप में लिया गया है।

## प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्शन

प्रस्तुत लघु शोध हेतु उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों के समग्र में से 150 मुस्लिम बुद्धिजीवियों (महिला/पुरुष) को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया है।

**प्रतिदर्श सारणी**

| मुस्लिम बुद्धिजीवी | अध्यापक | चिकित्सक | अधिवक्ता | विद्यालय प्रबंधक | सरकारी सेवक | निजी व्यवसायी (समाज सेवक/ स्वतंत्र चिंतक |
|---|---|---|---|---|---|---|
| चयनित संख्या | 40 | 30 | 30 | 10 | 13 | 27 |

प्रस्तुत शोध में प्रतिदर्श चयन अथवा प्रतिदर्श हेतु सोद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है।

### उपकरण

प्रस्तुत लघु शोध कार्य हेतु शोधकर्तृ द्वारा समस्या से संबंधित शोध साहित्यों के अध्ययन में समस्या से संबंधित कोई उपकरण उपलब्ध नहीं पाया गया। उपकरण की अनुपलब्धता के कारण शोधकर्तृ द्वारा स्वयं, निर्देशक के निर्देशन में मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत का ज्ञान प्राप्त करने हेतु एक अभिमतावली 'मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत जानने हेतु अभिमतावली' तैयार की गयी।

## प्रदत्त संकलन एवं वर्गीकरण

प्रस्तुत लघु शोध में शोधकर्तृ द्वारा निर्मित अभिमतावली के प्रशासन द्वारा मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमत प्राप्त किये गये। इसके पश्चात प्रत्येक पद पर दिये गये सहमत, तटस्थ, असहमत मतों की आवृत्तियों का योग किया गया और इस तरह प्रदत्त संकलित कर व्यापक प्रदत्त तालिका में वर्गीकृत किया गया।

## प्रदत्तों का विश्लेषण

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सर्वप्रथम प्रदत्तों को व्यापक प्रदत्त तालिका में वर्गीकृत किया गया, तत्पश्चात् शोधकर्तृ द्वारा यह निर्णय लिया गया कि प्रदत्तों की सार्थकता की जाँच .01 सार्थकता स्तर पर की जाएगी। प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु शोधकर्तृ द्वारा काई वर्ग ($\chi^2$) परीक्षण का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का विश्लेषण के लिए काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग समान प्रायिकता पर

किया गया। इन बुद्धिजीवियों से प्राप्त मतों की आवृत्तियों को सहमत, तटस्थ, असहमत के रूप में वर्गीकृत किया गया। अभिमतों की सार्थकता के परीक्षण हेतु काई वर्ग परीक्षण के निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया–

$$X^2 = \sum \left[ \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e} \right]$$

यहाँ

$X^2$ = काई वर्ग

$f_0$ = प्राप्त आवृत्ति, अर्थात् बुद्धिजीवियों से प्राप्त अभिमत

fe = प्रत्याशित आवृत्ति, अर्थात् बुद्धिजीवियों का प्रत्याशित अभिमत

बुद्धिजीवियों के अभिमतों का सांख्यिकीय विश्लेषण निम्नलिखित सारणी में अभिव्यक्त किया गया है–

**बुद्धिजीवियों की विभिन्न पदों के समक्ष दी गयी सूचनाओं का अंकन एवं विश्लेषण**

| कथन (पद) संख्या | सहमत | तटस्थ | असहमत | ($X^2$) का मान | सार्थकता स्तर .01 पर परिणाम |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 69 | 36 | 45 | 21.24 | >.01 |
| 2 | 62 | 32 | 56 | 10.08 | >.01 |
| 3 | 72 | 23 | 55 | 24.76 | >.01 |
| 4 | 64 | 36 | 50 | 7.84 | >.05 |
| 5 | 66 | 40 | 44 | 9.84 | >.01 |
| 6 | 73 | 37 | 40 | 15.96 | >.01 |
| 7 | 65 | 52 | 33 | 10.36 | >.01 |
| 8 | 75 | 35 | 40 | 19.00 | >.01 |
| 9 | 66 | 45 | 39 | 8.04 | >.01 |
| 10 | 77 | 31 | 42 | 23.08 | >.01 |
| 11 | 65 | 39 | 46 | 7.24 | >.05 |
| 12 | 80 | 27 | 43 | 29.56 | >.01 |
| 13 | 73 | 30 | 47 | 18.76 | >.01 |
| 14 | 76 | 24 | 50 | 27.04 | >.01 |
| 15 | 67 | 41 | 42 | 8.68 | >.05 |
| 16 | 68 | 50 | 32 | 12.96 | >.01 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 17 | 75 | 32 | 43 | 19.96 | >.01 |
| 18 | 74 | 24 | 50 | 27.04 | >.01 |
| 19 | 74 | 33 | 43 | 18.28 | >.01 |
| 20 | 73 | 30 | 47 | 18.76 | >.01 |
| 21 | 51 | 41 | 58 | 2.92 | NS |
| 22 | 85 | 31 | 34 | 36.84 | >.01 |
| 23 | 76 | 25 | 49 | 26.04 | >.01 |
| 24 | 81 | 27 | 42 | 31.08 | >.01 |
| 25 | 71 | 34 | 45 | 14.44 | >.01 |
| 26 | 86 | 33 | 31 | 38.92 | >.01 |
| 27 | 83 | 40 | 27 | 34.36 | >.01 |
| 28 | 79 | 31 | 40 | 26.04 | >.01 |
| 29 | 80 | 37 | 33 | 27.16 | >.01 |
| 30 | 82 | 46 | 22 | 36.48 | >.01 |
| 31 | 75 | 40 | 35 | 19.00 | >.01 |
| 32 | 76 | 42 | 32 | 21.28 | >.01 |
| 33 | 76 | 46 | 28 | 23.52 | >.01 |
| 34 | 76 | 42 | 32 | 21.28 | >.01 |
| 35 | 82 | 24 | 44 | 34.72 | >.01 |
| 36 | 81 | 43 | 26 | 31.72 | >.01 |
| 37 | 48 | 40 | 26 | 36.64 | >.01 |
| 38 | 81 | 43 | 26 | 31.72 | >.01 |
| 39 | 76 | 42 | 32 | 21.28 | >.01 |
| 40 | 78 | 45 | 27 | 26.76 | >.01 |
| 41 | 78 | 41 | 31 | 24.52 | >.01 |
| 42 | 80 | 42 | 28 | 28.96 | >.01 |
| 43 | 84 | 36 | 30 | 35.04 | >.01 |
| 44 | 84 | 37 | 29 | 35.52 | >.01 |
| 45 | 84 | 36 | 30 | 35.04 | >.01 |
| 46 | 85 | 36 | 29 | 37.24 | >.01 |
| 47 | 81 | 40 | 29 | 30.04 | >.01 |
| 48 | 71 | 39 | 40 | 13.24 | >.01 |
| 49 | 81 | 43 | 26 | 31.72 | >.01 |
| 50 | 73 | 47 | 30 | 18.76 | >.01 |

- प्रत्येक विकल्प की प्रत्याशित आवृत्ति 50 है।
- df का मान 2 है।

## परिणाम

अभिमतावली द्वारा प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर 45 कथनों पर .01 सार्थकता स्तर पर परिकल्पना अस्वीकृत की गयी। 4 कथनों पर .05 सार्थकता स्तर पर परिकल्पना अस्वीकृत की गयी। केवल एक कथन पर दोनों सार्थकता स्तरों पर परिकल्पना अस्वीकृत नहीं हुई।

## निष्कर्ष

प्रस्तुत लघु शोध अध्ययन के परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जाता है कि वाराणसी जिले के मुस्लिम बुद्धिजीवियों की राय में मुस्लिम बच्चों की प्रमुख शैक्षिक समस्याएँ हैं – निम्न पंजीकरण, अपव्यय एवं अवरोधन। इन समस्याओं के लिए उत्तरदायी कारक हैं, उनकी निम्न आर्थिक स्थिति, उच्च स्तरीय उर्दू माध्यम की शिक्षण संस्थाओं का अभाव, मदरसा बोर्ड की परंपरागत प्रकृति, खुली शिक्षा व्यवस्था के बारे में अनभिज्ञता, प्रशिक्षित शिक्षकों एवं शिक्षण सामग्रियों का अभाव आदि। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण जैसे मुस्लिम शिक्षण संस्थानों में कुशल प्रबंधन का अभाव, समुचित पर्यवेक्षण का अभाव, तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव आदि मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन के लिए किसी न किसी रूप में उत्तरदायी हैं।

इन बुद्धिजीवियों की राय में मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने एवं उनके उत्तरोत्तर शैक्षिक विकास के लिए आवश्यक उपाय अपनाये जाने चाहिए, तभी उनके शैक्षिक पिछड़ेपन को समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए सर्वप्रथम विद्यालय स्तर से शुरुआत की जाय और विद्यालयी शिक्षा में उनके पंजीकरण में वृद्धि, अपव्यय एवं अवरोधन रोकने के आवश्यक उपाय, जैसे इनके अभिभावाकों के रोजगार साधनों में वृद्धि, राज्य सरकारों द्वारा उच्च स्तरीय उर्दू माध्यम के विद्यालयों की स्थापना, मदरसा बोर्ड का आधुनिकीकरण, प्रशिक्षित शिक्षकों, शिक्षण सामग्रियों, तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था, मदरसों की डिग्रियों को प्रतियोगी परीक्षाओं में मान्यता, निष्पक्ष मूल्यांकन, अतिरिक्त शिक्षण एवं सहायक शिक्षण संस्थानों की व्यवस्था आदि अपनायी जायें। मुस्लिम परिवारों में व्याप्त संकीर्ण मानसिकता को स्वयं इन बुद्धिजीवियों द्वारा दूर किया जाय ताकि वे अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए अभिप्रेरित हो सकें। साथ ही इन बुद्धिजीवियों का मत है कि निम्न मध्यम वर्गीय और निम्न वर्गीय मुस्लिम परिवारों के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सरकार द्वारा अधिक से अधिक प्रयास किये जायें, सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों का प्रचार–प्रसार किया जाय ताकि ये लोग इनके बारे में जान सकें और इनका लाभ उठा सकें।

## परिसीमन

संसाधन एवं समय की कमी को देखते हुए प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं पर परिसीमित किया गया है–

- इस अध्ययन के अन्तर्गत मात्र वाराणसी महानगर के मुस्लिम बुद्धिजीवियों को ही सम्मिलित किया गया है।
- इस अध्ययन में प्रयुक्त होने वाली अभिमतावली मात्र हिन्दी भाषा में प्रेषित की गयी है।
- इस अध्ययन में सोद्देश्य प्रतिदर्शन विधि का प्रयोग किया गया है।
- सामान्यीकरण के लिए प्रस्तुत अध्ययन मात्र एक संकेत है।
- प्रस्तुत अध्ययन में अप्राचल सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है।
- वाह्यचरों का प्रभाव स्थिर रखने में न्यादर्श का आकार छोटा हो गया है।

## सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन के पूर्ण होने पर शोधकर्तृ को कुछ सीमाओं की अनुभूति हुई, जो अग्रलिखित हैं–

- अभिमतावली के अतिरिक्त अन्य उपकरण का भी प्रयोग किया जाना श्रेयस्कर होता।
- साक्षात्कार विधि द्वारा बुद्धिजीवियों के दृष्टिकोण को एकत्र किया जाना इस अध्ययन को और अधिक वैधता प्रदान करता है।

## शैक्षिक निहितार्थ

इस अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ अग्रलिखित हैं–

- इस अध्ययन के माध्यम से शिक्षा संबंधी नीतियाँ बनाने वाले नीति निर्माताओं का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया जा सकता है।
- मुस्लिम अभिभावकों को अभिप्रेरित करने में बुद्धिजीवी वर्ग का सहयोग आवश्यक है।
- बुद्धिजीवी वर्ग के अभिमतों के माध्यम से मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारणों का ज्ञान होता है।
- अभिमतों के माध्यम से शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के उपायों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है।
- बुद्धिजीवियों के अभिमतों के माध्यम से पहले से स्थापित मुस्लिम विद्यालयों, मदरसों में आवश्यक सुधार के उपाय का ज्ञान प्राप्त होता है।

## भावी शोध हेतु सुझाव

प्रस्तुत शोध समस्या से संबंधित कुछ अन्य विषय, जिन पर भविष्य में अनुसंधान किया जा सकता है, इस प्रकार हैं–

- मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के प्रयासों का अध्ययन।
- मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु निर्मित सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की सफलता–असफलता का अध्ययन।
- मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम अभिभावकों को प्रेरित करने वाले जागरुकता अभियानों का अध्ययन।
- मुस्लिम बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु मुस्लिम बुद्धिजीवियों के अभिमतों का तुलनात्मक अध्ययन।

## *संदर्भ ग्रंथ*


ओझा, एस.के. (सं.) (2010) : सामान्य अध्ययन विशेषांक : जनसंख्या एवं नगरीकरण, इलाहाबाद, बौद्धिक प्रकाशन।

परवीन, निशान्त (1989) : उन्नीसवीं सदी के मुस्लिम शिक्षाविदों का आधुनिक भारतीय शिक्षा में योगदान – एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध ग्रंथ, वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

राय, गीता (2005) : भारतीय चिंतन एवं शिक्षा, वाराणसी, विशेष कार्याधिकारी (प्रकाशन), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

सिंह, कृष्णा (1992) : मध्यकालीन भारत में इस्लामी शैक्षिक प्रचलन का भारतीय शैक्षिक प्रचलनों पर प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन, अप्रकाशित पी–एच.डी. शोध ग्रन्थ, वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

अगनेस, माइकल (सं.) (2001) : वैबस्टर्स न्यू वर्ल्ड कालेज, डिक्सनरी, न्यू मिलेनियम (फोर्थ एडीसन) नई दिल्ली, आईडीजी बुक्स इंडिया प्रा. लि.

बुच, एम.बी. (संपा.) (1991) : फोर्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन (1983–88) (वाल्यूम II) दिल्ली, एनसीईआरटी

बुच, एम.बी. (सम्पा.) (1997) : फिफ्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन (1988–92) (वाल्यूम I) दिल्ली, एनसीईआरटी

जैरी, डेविड एंड जैरी, जूलिया (2000) : कोलिन्स डिक्सनरी और सोशियोलॉजी, ग्लासगो, हार्पर कालिन्स पब्लिशर्स

कासमी, ए.एच. (सम्पा.) (2006) : इंटरनेशनल इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम : इस्लाम एंड एजुकेशन (वाल्यूम VIII), दिल्ली, ईशा बुक्स

सच्चर रिपोर्ट (2006) : सोशियल, इकानोमिक एंड एजुकेशनल स्टेट्स आफ द मुस्लिम कम्युनिटी आफ इंडिया, दिल्ली, कैबिनेट सेक्रेटेरियल, गवर्नमेंट आफ इंडिया

सिक्स्थ सर्वे आफ एजूकेशनल रिसर्च (1993–2000), (वाल्यूम II) (2005), दिल्ली एनसीईआरटी।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

# प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा

## शोभारानी दुबे*

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास प्राचीन काल से ही समकालीन विश्व की अन्य सभ्यताओं से विशिष्ट रहा है। यह विशिष्टता नारी शिक्षा के क्षेत्र में भी दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन कालीन विश्व की अन्य सभ्यताओं में जहाँ समाज में नारी की स्थिति असंतोषजनक दिखाई पड़ती है, वहीं भारतीय समाज में ''यत्र नारी पूज्यन्ते तत्र रम्यते देवता'' की अभिव्यंजना चरितार्थ होती दिखाई पड़ी है। प्राचीन भारत में दीर्घकाल तक वैदिक सभ्यता अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अस्तित्व में रही है।

इसलिए सुदीर्घ काल तक भारत में शिक्षा से तात्पर्य वैदिक शिक्षा से ही रहा है। वैदिक यज्ञों में समान रूप से स्त्री एवं पुरुष सम्मिलित होते थे तथा दोनों ही पूर्ण निपुणता एवं विद्वता से वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया करते थे। इस युग में स्त्री पुरुषों के समान ही बिना किसी भेदभाव के शिक्षा ग्रहण करती थी। पुत्र के समान पुत्री का भी उपनयन संस्कार विद्यारंभ के पूर्व अनिवार्य रूप से सम्पादित करवाया जाता था। यज्ञ सम्पादन एवं वेदाध्ययन के अतिरिक्त दर्शन और तर्कशास्त्र में भी स्त्रियों की निपुणता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में रोमशा, अपाला, ऊर्वशी, विश्वारा, सिकता, निवावरी, घोषा, लोपामुद्रा जैसी लगभग बीस ऋग्वेद की ऋचाओं का प्रणयन करने में योगदान प्रदान करने वाली स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है। यज्ञों के आयोजन में पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी।[1] केवल उसकी उपस्थिति अनिवार्य ही नहीं थी, वह समान रूप से यज्ञ में सहयोगी होती थी।[2] सूत्र कालीन स्त्री भी पुरुष के समान ही बराबरी से यज्ञ सम्पादन में सहयोग करती दिखाई पड़ती है।[3] मौर्य साम्राज्य के पतन काल तक ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं कि पत्नी को संध्या समय में प्रतिदिन और कभी-कभी भोर में भी अकेले गृह अग्नि में हविष देने की अनवार्यता थी।[4] अग्रहायण विधि से स्त्रस्तरारोहण संस्कार में पत्नी को कई वैदिक मंत्रों का जाप करना होता था।[5] ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई उत्तर वैदिक काल की स्त्री भी शिक्षा ग्रहण करती थी। पाण्डवों की माता कुन्ती के अथर्ववेद में पारंगत

---

* सहायक प्राध्यापक, जे.पी. कॉलेज ऑफ एजुकेशन, जे.पी. नगर, रीवा (म.प्र.)

होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।[6] इस दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता है कि उस काल की स्त्रियाँ विदुषी और मंत्रविद् होती थीं, जिनके द्वारा ब्रह्मचर्य[7] का अनुगमन करते हुए उपनयन संस्कार सम्पादित करवाया जाता था। रामायण से विदित होता है कि रामचन्द्र जी के युवराज पद पर अभिषेक के दिन रानी कौशल्या भोर से यज्ञ सम्पादन में नियोजित थीं।[8] रामायण में ही वर्णित है कि जब बालि सुग्रीव के साथ युद्ध करने के निमित्त प्रस्थान कर रहा होता है, तब उसकी पत्नी तारा भी यज्ञ कर रही होती है।[9]

## बालिकाओं का उपनयन

वैदिक काल में यज्ञों एवं संध्या प्रार्थना के समय मंत्रों का पाठ करने के लिए उपनयन संस्कार की बाध्यता अधिरोपित की गई थी। अर्थात् इन मंत्रों का उच्चारण करने का अधिकार उस व्यक्ति को ही था, जिसका विधिवत उपनयन संस्कार हुआ हो। अत: उस काल में यह स्वाभाविक था कि पुत्रियों का उपनयन संस्कार सम्पादित करवाया जाए। कन्याओं के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है।[10] 500 ई.पू. तक के सूत्र साहित्य में भी इस तरह के उल्लेख प्राप्त हुए हैं। मनु स्मृति के अध्ययन से भी बालिकाओं के लिये ब्रह्मचर्य व्रत के पालन की अनिवार्यता का भान होता है।[11]

## छात्राओं के दो वर्ग

वैदिक काल में सद्योवधु और ब्रह्मवादिनी नामक छात्राओं के दो वर्ग बनाये गये थे। ऐसी छात्राएँ जो विवाह के पूर्व तक कुछ वैदिक मंत्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं, सद्योवधु कहलाती थीं। जबकि अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपना जीवन लगा देने वाली ऐसी छात्राएँ, जो विवाह नहीं करती थीं ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। कुशध्वज ऋषि की विदुषी कन्या वेदवती जैसी कुछ बालिकाओं ने जीवन पर्यन्त अध्ययन में लीन रहते हुए विवाह नहीं किया और ब्रह्मवादिनी कहलायी।[12]

## स्त्रियों की विद्वता

ब्रह्मवादिनी विदुषियाँ बहुमुखी प्रतिभा की धनी होती थीं। इन्हें वैदिक साहित्य में ही पाण्डित्य प्राप्त नहीं था, अपितु इन्होंने अपने बुद्धि और विवेक से अनेक मंत्रों का प्रणयन भी किया। इनके बहुत से मंत्रों ने वैदिक साहित्य को शोभायमान किया है। वैदिक यज्ञों और ज्ञान की क्लिष्टता बढ़ने के साथ तत्सम्बन्धी अध्ययन के निमित्त 'मीमांसा' नामक एक नई शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। मीमांसा को एक रूखे विषय के रूप में जाना जाता है,

तथापि वैदिक युग की विदुषियों को हम इस क्षेत्र में भी पर्याप्त अभिरुचि का प्रदर्शन करते पाते हैं। 'काशकृत्स्नी' नामक मीमांसा जैसे क्लिष्ट एवं गूढ़ विषय पर अत्यधिक चर्चित हुई पुस्तक की लेखिका काशकृत्स्नी नामक स्त्री ही थी।[13] जिन्होंने इस पुस्तक का अध्ययन किया था, उन्हें 'कशकृत्स्नी' ही कहा जाता था। मीमांसा जैसे क्लिष्ट विषय का अध्ययन करने वाली स्त्रियों की पर्याप्त संख्या निरखकर हम यह अनुमान सहज ही निकाल सकते हैं कि साधारण साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन करने वाली स्त्रियों की संख्या उस काल में पुरुषों के तुल्य ही पर्याप्त रही होगी। अध्ययन के क्षेत्र में स्त्रियों की अत्यन्त बढ़ी हुई रुचि का आभाष हमें तब भी हो जाता है, जब हम दर्शन जैसे गूढ़ और गंभीर विषय में भी उन्हें पारंगत पाते हैं। याज्ञवल्क्य की स्त्री मैत्रेयी अपने काल की विख्यात दार्शनिक थी। उसकी अभिरुचि वस्त्राभूषणों से अधिक दर्शन की गंभीर समस्याओं में थी।[14] उसके ज्ञान पिपाशा की झलक उस समय देखने को मिली, जब उसने अपने पति याज्ञवल्क्य की सम्पत्ति में अपने अधिकार का परित्याग, अपने पति की दूसरी पत्नी के हित में करके, केवल ज्ञान प्राप्त करने की याचना की। जनक की राजसभा में यज्ञ के अवसर पर आयोजित हुई विद्वद्गोष्ठी में गार्मी वाचक्नवी नामक विदुषी ने याज्ञवल्क्य से आध्यात्मिक शास्त्र पर इतने सूक्ष्म और क्लिष्ट प्रश्न पूछे थे कि पूरा विद्वद्समाज ही स्तब्ध हो गया था।[15] प्रश्नों की क्लिष्टता इस बात से प्रमाणित होती है कि ऋषि याज्ञवलक्य ने उन प्रश्नों का उत्तर सार्वजनिक स्थान में देने में असमर्थता व्यक्त कर दी थी। इसी प्रकार मैत्रेयी नामक विदुषी की ख्याति वाल्मीकि और अगस्त नामक ऋषियों से वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने के कारण फैली थी।[16] रामायण से ज्ञात होता है कि कौशल्या एवं तारा को मंत्रों का असाधारण ज्ञान था। सीता भी प्रतिदिन वैदिक प्रार्थनाओं का वाचन करती थीं।[17] द्रोपदी के पाण्डित्य का उल्लेख महाभारत स्पष्ट रूप से करता है। रामायण में ही अत्रेयी नामक विदुषी का विवरण मिलता है, उसने वाल्मीकि आश्रम में रहकर ज्ञानार्जन किया था। सुलभा, बढ़वा, प्रथितेयी, मैत्रेयी और गार्गी जैसी इस काल की विदुषी नारियों ने अवश्य ही ज्ञान के विकास में अमूल्य योगदान किया होगा, क्योंकि ब्रह्मयज्ञ में नित्य तर्पण दिये जाने वाले ऋषियों में इनको भी परिगणित किया गया है।[18]

## बौद्ध युग में स्त्री शिक्षा

भगवान बुद्ध ने अपने परम शिष्य आनन्द के कहने पर स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी थी। बुद्ध के इस निर्णय से उस काल की नारियों में शिक्षा और दर्शन का प्रसार सरलता से हो सका। बौद्ध युग में भी वैदिक युग की ब्रह्मवादिनियों की

भाँति धर्म और दर्शन के आर्यसत्यों से भिज्ञ होने की अभिलाषा में विदुषियाँ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थी। इनमें से तो कई धर्म प्रचार के पवित्र उद्देश्य को लेकर दूर देशों की यात्रा पर भी गईं। इनकी विद्या, धर्म तथा दर्शन में अत्यधिक रुचि थी। बौद्ध आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में भी इन्होंने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की। थेरीगाथा की कवियित्रियों में 32 का उल्लेख आजीवन ब्रह्मचारिणियों के रूप में प्राप्त होता है तो अठारह विवाहित भिक्षुणियाँ भी थीं। इन ब्रह्मचारिणी युवतियों में से शुभा, अनुपमा तथा सुमेधा आदि उच्च अभिजात कुलों की ऐसी रूपवती कन्याएँ थी, जिनसे विवाह करने के निमित्त राजकुमार तथा बड़े-बड़े श्रेष्ठियों के पुत्र लालायित रहते थे।[19] भिक्षुणी खेमा उस युग की ऐसी उच्च शिक्षा प्राप्त विदुषी थी, जिसकी विद्वता का यश प्रकाश चारों दिशाओं में फैला हुआ था। इसी प्रकार सुभद्रा नामक भिक्षुणी को व्याख्यान देने में महारत प्राप्त थी, इसका उल्लेख संयुक्त निकाय में हुआ है। राजगृह के धन-धान्य से सम्पन्न एक श्रेष्ठि की पुत्री भद्राकुण्डकेशा के द्वारा अपनी विद्वता एवं ज्ञान से विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का उल्लेख भी बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है। इन उद्धरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि जब धर्म और दर्शन के समान क्लिष्ट विषय के ज्ञानार्जन के निमित्त इतनी अधिक संख्या में स्त्रियों के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता था तो महिलाओं में साधारण शिक्षा और योग्यता का प्रतिशत अवश्य ही उच्च रहा होगा। जैन साहित्य भी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख करता है। जयन्ता नामक कौशम्बी शासक की पुत्री अपनी विद्वता और दर्शन के ज्ञान के लिए जानी जाती थी। इसी प्रकार एक जातक एक ऐसे जैन पिता का उल्लेख करता है, जिसकी चार पुत्रियों ने देश का भ्रमण करते हुए लोगों को दर्शनशास्त्र पर वाद-विवाद करने के लिए चुनौती दी।[20]

## नारी शिक्षा के साधन

वैदिक काल में बहुत समय तक परिवार ही शिक्षण की एक मात्र संस्था रही है। पुत्र भी परिवार मे 4पिता, काका, चाचा या बड़े भाई से ही शिक्षा ग्रहण करता था। बालिकाओं की स्थिति स्वाभाविक रूप से इसी प्रकार रही होगी। यम के समान उत्तर वैदिक काल के स्मृतिकार का यह कथन कि ''बालिकाओं को निकट सम्बधी ही शिक्षा दें[21] इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि ईसा के प्रारंभिक काल में यह व्यवस्था नहीं थी। उस काल तक स्त्रियाँ बहुत बड़ी संख्या में उच्च शिक्षा ग्रहण करती हुई, विद्या के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही थीं। संस्कृति साहित्य में प्राप्त होने वाले शब्द उपाध्याया[22] एवं उपाध्यायानी इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि अनेक विद्वान

ज्ञानी महिलाएँ शिक्षिका के रूप में अध्यापिकाओं का जीवन व्यतीत किया करती थीं। ये महिलाएँ पूरी लगन, निष्ण एवं उत्साह से अपने विहित शैक्षणिक कर्म का निष्पादन करती थीं। इनका कार्य छात्राओं को पढ़ाना तथा उन्हें अन्यान्य कई विषयों का ज्ञान प्रदान करना था। साहित्यकारों के उद्धरणों से ही यह विदित होता है कि उपाध्यायाओं की अलग-अलग शिक्षा-शालाएँ हुआ करती थीं, जिनका प्रबंध पूर्णतः उन्हीं के द्वारा किया जाता था। यहीं पर महिलाएँ आकर शिक्षा ग्रहण करती थीं। महिला-शिक्षणशाला का उल्लेख पाणिनि ने किया है।[23] महिलाओं की शिक्षणशालाएँ इस कारण भी पर्याप्त संख्या में अस्तित्व में रही होंगी, क्योंकि भारत में बारहवीं शताब्दी तक हिन्दू समाज में पर्दा प्रथा नहीं थी, इसलिए अत्यधिक संख्या में महिलाएँ उनमें अध्ययन करने जाती रही होंगी।

## नारी शिक्षा के रूप

पुराणों के अध्ययन से हमें यह विदित हो जाता है कि उस काल में नारी शिक्षा दो रूपों में चल रही थी। पहला आध्यात्मिक था, जबकि दूसरा व्यावहारिक। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त विदुषियों में वृहस्पति भगिनी-भुवना[24] अपर्णा, एकपर्णा, एकपाटला[25] मेना, धारिणी[26] सन्नति[27], शतरूपा[28] आदि के नाम प्रमुखता से पुराणों में द्रष्टव्य होते हैं। ये कन्याएँ ब्रह्मवादिनी थीं। पुराणों में ही ऐसी कन्याओं का भी उल्लेख आया है जिन्होंने अपने तप के बल पर अपनी अभिलाषित इच्छा की पूर्ति की है। इस तरह की कन्याओं में उमा, पीवरी, धर्मव्रता जैसी तपोनिष्ठाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।[29] आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि योग और तप पर ही निर्भर थी। इसके लिये स्त्री के व्यवहार में ब्रह्मचर्य, सदाचरण, शील, शुचिता, सच्चरित्रता और सद्व्यवहार का सन्निहित होना परम आवश्यक था। गृह में माता, पिता, भाई एवं परिवार के साथ रहते हुए कन्या को गार्हस्थिक शिक्षा भी अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। ऋग्वैदिक काल में अपाला नामक ऐसी कन्या का उल्लेख्य प्राप्त हुआ है, जो कृषि कार्य में अपने पिता को सहयोग प्रदान करती थी।[30] उस काल में पुत्रियों/कन्याओं के लिये उपयोग में आने वाले शब्द 'दुहिता' से इस बात का आभाष होता है कि वो गाय दुहना भी जानती थीं। उनके द्वारा सूत कातने, बुनाई करने एवं वस्त्र सिलने के दृष्टांत भी उस काल में प्राप्त होते हैं[31]। ललित कलाओं में उनकी निपुणता के अवतरणों से ऋग्वेद भरा हुआ है। यदि कौशलपूर्वक नृत्य करने में वो सिद्धस्थ थीं तो उन्हें निर्बाध रूप से ऋग्वेद की ऋचाओं का गान करने में भी दक्षता प्राप्त थी।[32]

नृत्य, संगीत, गान, चित्रकला आदि के समान व्यावहारिक शिक्षा कन्याएँ उत्तर वैदिक काल में भी ग्रहण करती थीं।[33] संभवतः नृत्य एवं गीत में स्त्रियों की प्रत्येक काल

में अभिरुचि प्रदर्शित होती रही है। रामायण तथा महाभारत के कई पृष्ठ गीत एवं नृत्यों के उद्धरणों से भरे हुए हैं। अपनी भाव-भंगिमाओं से लोगों को उत्फुल्ल करने के लिए त्रिपुर की स्त्रियाँ प्रसिद्ध थीं।[34] अर्थात वो बहुत अच्छी नृत्यांगना होती थीं और लोगों में एक आकर्षण का वातावरण बनाये रखती थीं। नृत्यांगनाओं की भाव भंगिमा और अप्सराओं की आकर्षक नृत्यकला शोभा और सुन्दरता के मुख्य आकर्षण होते थे। चित्रकला का भी उस काल में समुचित विकास हो गया दीख पड़ता है। चित्रकला के प्रधान आधार सुस्थ, रेखांकन, रंगों का अपेक्षित प्रयोग एवं आकृति का अभिव्यक्तिकरण को माना जाता था। इस संबंध में कई पौराणिक श्रोत प्राप्त होते हैं। बाणासुर के मंत्री क्रष्माण्ड की कन्या की सखी चित्रलेखा के द्वारा चित्रपट पर अनेक देवी-देवताओं, गन्धर्वों एवं मनुष्यों की आकृतियों का उत्कीर्णन किया गया था। इन चित्रों में अनिरुद्ध का चित्र अत्यन्त सुन्दर मन को मोहने वाला था।[35]

## सहशिक्षा

प्राचीन भारत में सहशिक्षा का प्रचार था अथवा नहीं? यह उत्सुकता बढ़ाने वाला प्रश्न है। परंतु यह अत्यंत विशाद का विषय है कि समृद्ध प्राचीन कालीन साहित्यिक परम्परा होने के बावजूद इस विषय पर बहुत अधिक प्रकाश नहीं पड़ा है। तथापि उपलब्ध द्वितीयक श्रोतों से सहशिक्षा के अस्तित्व में होने के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हो जाते हैं। छात्र छात्राओं के एक साथ शिक्षा प्राप्त करने का प्रमाण उत्तर रामचरित में दृष्टव्य होता है, जब वाल्मीकि आश्रम में आत्रेयी, लव और कुश के साथ शिक्षा ग्रहण करती दीख पड़ती है।[36] आठवीं शताब्दी में भवभूति के द्वारा रचित नाटक 'मालती माधव' से जानकारी प्राप्त होती है कि कामन्दकी ने भूरिवसु तथा देवराट के साथ एक ही गुरुकुल में शिक्षा पाई थी।[37] इस गुरुकुल में विभिन्न दिशाओं से लोग आकर ज्ञानार्जन करते थे। ये उद्धरण मेरी दृष्टि में इस तथ्य को प्रमाणित करने के निमित्त पर्याप्त हैं कि आठवीं शताब्दी में भवभूति के समय यदि नहीं तो उससे कुछ शताब्दी पूर्व तक अवश्य ही बालक एवं बालिकाएँ एक ही गुरुकुल में साथ-साथ उच्च शिक्षा अर्जित किया करते थे। पुराणों में हम कहोद और सुजाता तथा रूहू और प्रमदवरा की कथाएँ पढ़ते हैं। इन कथाओं में भी यही दिखाई पड़ता है कि बालिकाओं का विवाह पर्याप्य आयु हो जाने के उपरांत ही सम्पादित किया जाता था और विवाह के पूर्व वो पाठशालाओं में बालकों के साथ विधिवत विहित शिक्षा ग्रहण करती थीं। सयानी

अवस्था तक बालकों एवं बालिकाओं के साथ-साथ अध्ययन करने के फलस्वरूप कभी-कभी गन्धर्व विवाह भी होते थे। समकालीन साहित्य के अध्ययन से ऐसा आभास भी मिलता है कि जब अभिभावकों को समाज में योग्य उपाध्यायाएँ उपलब्ध हो जाया करती थीं तो वे अपनी कन्याओं को अध्ययनार्थ उनके ही संरक्षण में सौंप दिया करते थे। परन्तु यदि ऐसी उपध्यायाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती थीं तो विवश होकर अभिभावक आचार्यों के पास अध्ययनार्थ अपनी कन्याओं को भेजते थे। उस काल में गंधर्व विवाह होना कोई असामान्य घटना नहीं थी[38] तथापि वर्तमान काल के समान ही अभिभावकों को सहशिक्षा से किसी प्रकार की शिकायत उस काल में भी नहीं थी। कितनी छात्राओं का प्रतिशत सहशिक्षा ग्रहण करता था, यह अभी भी खोज का विषय है। तथापि उपलब्ध श्रोतों से ऐसा विदित होता है कि यह संख्या कम ही रही होगी।

## नारी शिक्षा की दर

वैदिक काल में नारी शिक्षा का प्रतिशत निकाल पाना दुरुह कार्य है। तथापि उस काल के साहित्य में ऐसे माता-पिता का उल्लेख सहजता से प्राप्त होता है, जो विदुषी पुत्री की उत्पत्ति के लिए यज्ञ करते दिखाई पड़ते हैं।[39] इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में ऐसे अभिभावकों की कमी नहीं थी, जो अपनी पुत्रियों को सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत देखने के निमित्त उतावला रहा करते थे। ऐसे में कहा जा सकता है कि साधारण संपन्न परिवार की महिलाएँ शिक्षित हुआ करती थीं। बालकों के समान बालिकाओं के निमित्त उपनयन की अनिवार्यता से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उस काल की कुमारिकाएँ कुछ न कुछ वैदिक तथा साहित्यिक शिक्षा अवश्य ग्रहण करती रही होंगी। अत: हम स्पष्टतापूर्वक बिना किसी शक के कह सकते हैं कि जिस काल में बालिकाओं का उपनयन संस्कार होता था, वो बालकों के समान गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण कर सकती थीं, और जिनका विवाह सयानी अवस्था में होता था, उस काल में नारी शिक्षा की दर अच्छी रही होगी।

## महिलाओं के लिए वैदिक शिक्षा पर प्रतिबंध के कारण

संपूर्ण वैदिक ग्रंथों अथवा संस्कृत साहित्य के अध्ययन से महिलाओं के वैदिक शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिये जाने के कारणों का विवेचन कर पाना संभव नहीं है। तथापि इनके अध्ययन के उपरांत इन कारणों का अनुमान लगाकर इस पर चर्चा करने का प्रयास किया जा रहा है:

**1. अध्ययन के लिए समय की अनुपलब्धता:** हम देखते हैं कि उत्तरवैदिक साहित्य में वेदों के लिए बहुधा अपौरुषेय शब्द का उपयोग हुआ है। अपौरुषेय का अर्थ हुआ कि ये मनुष्यों द्वारा रचित न होकर देववाक्य ही थे। धीरे-धीरे इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा कि देव रचित इन वैदिक मंत्रों को बड़ी सावधानी से उच्चारित किया जाना चाहिए। उत्तर वैदिक काल तक पहुँचते-पहुँचते वैदिक पाठ्यक्रम का विस्तारण भी हो गया। अब इसमें चारों वेदों के अतिरिक्त इनके ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषदों को भी सम्मिलित कर लिया गया। उपनिषदों को वेद साहित्य की अंतिम कड़ी माना गया। इनमें अध्यात्म और अलौकिक विद्या के विकट, क्लिष्ट और गूढ़ रहस्यों का विस्तार से प्रतिपादन किया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर वैदिक काल में संपूर्ण वैदिक साहित्य के अध्ययन के निमित्त पर्याप्त समय की आवश्यकता थी। पूर्ण वैदिक ज्ञानार्जन के अभिलाषी बालक अथवा बालिका को कम से कम 24 वर्ष की अवस्था तक अनवरत अध्ययन करना अनिवार्य था। वैदिक युग के संपूर्ण अध्ययन में हम पाते हैं कि 24 वर्ष की अवस्था होने के पूर्व ही बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता था। सामान्यत: इनके विवाह की आयु 16 अथवा 17 वर्ष की ही प्रतीत होती है। इस प्रकार हम अनुमान लगा सकते हैं कि संपन्न परिवार की बालिकाओं को वैदिक शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त्स केवल छ: सात वर्ष का समय ही उपलब्ध हो पाता था, जिसके चलते वो पूर्णता से वैदिक शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाती थीं। गृहकार्य में व्यस्त रहने के कारण निर्धन परिवार की बालिकाओं को तो उपनयन संस्कार उपरान्त वेदों का अध्ययन करने के निमित्त समय ही नहीं मिल पाता रहा होगा। अत: ऐसे परिवार की बालिकाएँ पढ़ाई में पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाती रही होंगी और अपने विवाह के समय भी पढ़े जाने वाले आवश्यक मंत्रों को शुद्धता से उच्चारण नहीं कर पाती रही होंगी। इस बात की पुष्टि सूत्र साहित्य से होती है। जहाँ उद्धरित किया गया है कि पुरोहित या वर इनके लिए मंत्र पढ़ते हैं।[40]

**2. वैदिक मंत्रोच्चार में त्रुटि का भय :** वेदों की पवित्रता उनके लिए प्रयुक्त किये जाने वाले शब्द अपौरुषेय से तो झलकती ही हैं, कुछ अन्य समकालीन सूत्र एवं संहिताकारों के उल्लेखों ने उन्हें अलौकिक साहित्य की मान्यता प्रदान करवा दी है। तैत्तिरीय संहिता के उल्लेखानुसार वेदत्व वह है, जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के द्वारा अगम्य या अबोध्य तत्वों का सुगमतापूर्वक बोध कराता है।[41] इन रचनाकारों ने यह भी लिखा है कि जिस प्रकार लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार के निमित्त चक्षु की आवश्यकता होती है, उसी

प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य से भिज्ञ होने के निमित्त वेद की अपेक्षा की जाती है। इन अवतरणों से हमें यह तो आभास मिल ही जाता है कि वेद में एवं उनके मंत्रों में देवत्व का आरोहण परवर्ती काल में किया जा चुका था। इसलिए इन मंत्रों का अशुद्ध उच्चारण देवताओं को कुपित कर सकता था, जिसके भयंकर परिणाम हो सकते थे। चूँकि महिलाओं की वैदिक शिक्षा उचित ढंग से नहीं हो पाती थी व उनके द्वारा वैदिक मंत्रों के अशुद्ध उचचारण की संभावना बनी रहती थी, फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया कि महिलाओं की वैदिक शिक्षा पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया जाए, नहीं तो उनके असंगत मंत्रोचार के कारण पूरे परिवार को दैवकोप का भागी बनना पड़ेगा।

**3. वैदिक भाषा से लोकभाषा की भिन्नता :** उत्तर वैदिक कालान्तर में लोगों की बोलचाल की भाषा अर्थात् लोकभाषा वैदिक भाषा से भिन्न हो चुकी थी। वैदिक भाषा संस्कृत थी, जो देवभाषा भी कहलाती थी, तो लोकभाषा प्राकृत थी। इस काल की नारियाँ संस्कृत नहीं जानती थीं। वे बोलचाल में प्राकृत का ही प्रयोग करती थीं।[42] अत: वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाती थीं। जबकि पुरुष संस्कृत शुद्ध बोल लेते थे इसलिए वो वैदिक मंत्रों का प्रयोग भी शुद्धता से करते रहे होंगे। अत: वैदिक साहित्य की शुद्धता को बनाए रखने के लिए तत्कालीन नीति-नियंताओं ने यह निर्धारित किया होगा कि महिलाओं का वेदाध्ययन प्रतिबंधित कर दिया जाए।

**4. धार्मिक अधिकारों में ह्रास :** स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों में ह्रास के कारण इस काल में नारी शिक्षा में बड़ी अवनति हुई।[43] ऋग्वैदिक काल में बालकों के समान बालिकाओं के भी उपनयन संस्कार की बाध्यता थी।[44] इस कारण आर्यकन्याओं को कुछ न कुछ उच्च शिक्षा अवश्य प्राप्त हो जाती थी। किन्तु बाद के समय में बालिकाओं के उपनयन संस्कार में क्रमश: प्रतिबंध अधिरोपित कर दिया गया। ईसा पूर्व 500 के आसपास यह केवल नाम मात्र का ही रह गया होगा। उस काल में बालिकाओं को उपनयन संस्कार के पश्चात् शिक्षा प्रदान करवाना आवश्यक नहीं रह गया था।[45] इससे भी चार कदम आगे बढ़कर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में रचित मनुस्मृति में घोषणा होती है कि बालिकाओं के उपनयन संस्कार में वैदिक मंत्र पढ़े जाने आवश्यक नहीं हैं।[46] पुन: मनुस्मृति कहती है कि स्त्रियों का विवाह ही उनका उपनयन है।[47] इस प्रकार ईस्वी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक नाम मात्र के लिए विद्यमान बालिकाओं का उपनयन संस्कार समाप्त होने की स्थिति को प्राप्त होने लगा था। दूसरी शताब्दी ईस्वी में याज्ञवल्क्य ने बालिकाओं के उपनयन संस्कार पर पूर्ण प्रतिबंध अधिरोपित कर इसे पूरी तरह से समाप्त कर दिया।[48] याज्ञवल्क्य के प्रतिबंध को पुष्ट करते हुए परवर्ती स्मृतिकार यम ने लिखा है कि पूर्व काल में महिलाओं का भी

उपनयन संसकार होता था, तथा उन्हें विदिक ग्रंथों के अध्ययन का भी अधिकार था, किन्तु उन्होंने याज्ञवल्क्य की व्यवस्था मान ली।[49] उपनयन संस्कार पर प्रतिबंध आरोपण का दुस्प्रभाव यह हुआ कि स्त्रियों के धार्मिक अधिकार नगण्य हो गये तथा उन्हें शूद्रों के समान वेदोच्चा और यज्ञों के अयोग्य परिगणित किया जाने लगा।[50]

**5. बाल विवाह का प्रारंभ :** मनुस्मृति में यह उद्धशत हुआ है कि स्त्रियों का विवाह ही उसका उपनयन है। इस उद्धरण से ऐसा आभासित होता है कि पूर्व काल में जिस आयु में बालिका का उपनयन संस्कार होता था, अब उसी आयु में उसका विवाह किया जाने लगा। वैदिक काल में तो बालिकाओं का विवाह 15-16 वर्ष की आयु में ही होता था। परन्तु बाद के काल में लगभग 500 ईस्वी पूर्व में रजोदर्शन काल में बालिकाओं का विवाह करने की प्रथा चल पड़ी। यह आयु साधारणतः बारह वर्ष की होती थी। मनु इसी आयु को विवाह के निमित्त उचित ठहराते हैं।[51] मेघातिथि ने मिताक्षरा में कन्या के जिन तीन गुणों का वर्णन किया है, उनमें से एक अनन्यपूर्विका भी था। अनन्यपूर्विका का अर्थ था पहले किसी के साथ यौन संबंध स्थापित न किये हो।[52] इस अवतरण से इस प्रकार प्रतीत होता है कि विवाह कम आयु में ही होने लगे थे। महाकाव्य काल में महाभारत के अनुसार 30 वर्ष का व्यक्ति 10 वर्ष की कन्या से तथा 21 वर्ष का व्यक्ति 7 वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है।[53] इसी क्रम में सीता के अपहरण के समय का एक उद्धरण भी है; जब अपहरण के निमित्त आये रावण से वो कहती है कि निर्वासन के समय मेरी आयु 18 वर्ष थी और उसके 12 वर्ष मेरा विवाह हो चुका था।[54] दूसरी शताब्दी तक अल्पवयस्क कन्या के विवाह की प्रथा प्रतिष्ठित हो गई थी।[55]

## प्राचीन भारत की नारी लेखिकाएँ

वैदिक काल में पुत्र एवं पुत्रियों के सामाजिक एवं धार्मिक अधिकारों में बहुत अधिक अंतर नहीं था। पुत्र की भाँति पुत्री भी उपनयन, शिक्षा, दीक्षा एवं यज्ञ आदि की अधिकारिणी थी।[56] इसलिए पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भी कार्य योग्यता देखने को मिलती रहती है। लेखन के क्षेत्र में तो पुरुषों से किसी प्रकार पिछड़ती हुई नहीं दिख पड़ती। प्रारंभ में वो पुत्रों की भाँति उपनयन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारिणी के रूप में शिक्षा प्राप्त करती थी। ब्रह्मचर्य काल में वो अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों को विकसित करती हुई संस्कृत एवं धर्म के समस्त उपकरणों से भिज्ञ हो जाती थी तो पुरुषों की भाँति शिक्षा भी पाती थीं।[57] इसलिए वैदिक साहित्य में अनेक विदुषियों के उल्लेख मिलते हैं, जो

अपने-अपने विषय में पारंगत थीं। इसमें लोपामुद्रा[58], विश्वारा[59], सिकता[60] निशवरा[61] और घोषा[62] आदि ने ऋषियों की भाँति ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना की हैं।

ऋग्वेद काल के समान उत्तर वैदिक काल में भी अनेक विदुषी लेखिकाएँ हुई हैं। इस परवर्ती काल में दक्षिण भारत की कुछ कवयित्रियों ने प्राकृत भाषा में काव्य रचना की थी। हाल की गाथा सप्तशती में सात कवयित्रियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनके नाम रेखा[63], रोहा[64], माधवी[65], अनुलक्ष्मी[66], पाहई[67], वद्धवही[68] तथा शशिप्रभा[69] थे। संस्कृत भाषा में रचित साहित्य में भी उच्चकोटि की रचनाओं के प्रणयन के लिये अनेक कवियित्रियों का नाम आता है। राजेश्वर ने विदुषी और कवि स्त्रियों का उल्लेख किया।[70] लाट देश की देवी नामक कवयित्री तो इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसकी सूक्तियाँ उसके स्वर्गारोहण के वर्षो बाद तक पाठकों में अनुराग उत्पन्न करती थीं।[71] इसी प्रकार विदर्भ में विजयांका नामक एक इतनी प्रसिद्ध रचनाकार हुई कि उसकी कीर्ति की समता केवल कालिदास से ही की जाती थी।[72] राजेश्वर के द्वारा विजयांका की तुलना साक्षात ज्ञान की देवी सरस्वती से किये जाने से यह विदित होता है कि संस्कृत के काव्यकारों में उसका स्थान कितना ऊँचा था।[73] वर्ष 1950 के आसपास कौमुदी महोत्सव नामक एक नए संस्कृत नाटक की खोज हुई है।[74] विद्या या विज्जका नामक कवयित्री इसकी रचयिता है। इसके मूल कथानक का ताना-बाना उसने तत्कालीन मगध की राजधानी पाटलिपुत्र की एक राजनीतिक क्रांति से बुना है। इस नाटक में राजनीति की जिन बारीकियों को उभारा गया है, उससे यही प्रतीत होता है कि उस काल की महिलाएँ राजनीति इतिहास में भी गहरी रुचि रखती थीं। उत्तर वैदिक काल के संग्रहों में ही शीला, विज्जा, मारूला, मोरिका[75] एवं सुभद्रा[76] नामक कवयित्रियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त इस काल की लेखिकाओं के समालोचनाओं में रुचि लेने के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। राजशेखर की पत्नी कवयित्री तथा टीकाकर दोनों थी।[77] शंकर दिग्विजय से विदित होता है कि मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी शंकर और मण्डन मिश्र के मध्य हुए संस्मरणीय शास्त्रार्थ की निर्णायक थी।[78] अवश्य ही वह मीमांसा, वेदान्त और साहित्य की प्रकाण्ड विद्वान रही होगी।[79] कुछ विदुषियों के द्वारा आयुर्वेद की पाण्डित्य पूर्ण और प्रामाणिक रचनाएँ किये जाने के प्रमाण भी प्राप्त है।[80] कितनी अद्भुत बात है कि 8वीं शताब्दी में अरबी भाषा में आयुर्वेद के जिन ग्रंथों का अनुवाद किया गया था, उनमें रूसा नामक महिला लेखिका की प्रसव विज्ञान पर लिखी एक पुस्तक भी थीं।[81] परंतु ये बहुत ही निराशा का विषय है कि अधिकांश महिला लेखिकाओं की रचनाएँ वर्तमान में लुप्त हो गई हैं।

## कुल और नारी शिक्षा

नारी शिक्षा में कुल का बड़ा महत्व था।[82] पाठशालाओं या छात्राशालाओं में बालिकाओं के अध्ययन करने के उदाहरण कम मिलते हैं।[83] 'मालती माधव' में उल्लिखित है कि भूरिवसु और देवराट के साथ कामन्दकी ने पाठशाला में अध्ययन किया। इसी प्रकार रामायण का उल्लेख है कि अत्रेयी ने वेदान्त की शिक्षा लव एवं कुश के साथ-साथ वाल्मीकि के आश्रम में ग्रहण की। इसी क्रम में महाभारत का उल्लेख भी अनिवार्य है, जहाँ शैखावत्य के साथ अम्बा ने एक ही गुरुकुल में अध्ययन किया।[84] परंतु इस तरह के उदाहरण अपवाद स्वरूप ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्राचीन भारत में जनमत बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त घर से बाहर भेजने के विरुद्ध था।[85] धर्म सूत्रों तथा महाकाव्यों में भी कन्याओं को घर पर शिक्षा देने के उद्धरण प्राप्त होते हैं। महाभारत से विदित होता है कि द्रौपदी ने राजनीति की शिक्षा अपने भाइयों के संसर्ग में प्राप्त की थी।[86] इसी प्रकार उत्तरा को संगीत एवं नृत्य की शिक्षा अर्जुन ने उसके घर पर ही दी।[87] महाभारत के ही विराटपर्व में उल्लेख प्राप्त होता है कि क्षत्रिय स्त्रियाँ नृत्य-संगीत आदि ललित कलाओं का अध्ययन भी करती थीं। इस प्रकार की शिक्षा क्षत्रियों के अतिरिक्त अभिजात्य वर्ग अर्थात् उच्च कुल में भी प्रचलित थी। पहली-दूसरी शताब्दी में लिखे गये वात्सायन के कामसूत्र में महिला शिक्षा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसके अनुसार उस युग में कन्याओं को पुस्तक वाचन, काव्य, पुराण, प्रहेलिका, नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि 64 कलाओं की शिक्षा दी जाती थी[88] किन्तु सुसंस्कृत परिवारों में ही यह व्यवस्था थी। गृह विज्ञान की शिक्षा तो घर पर ही दी जाती थी।

## नारी की आत्मनिर्भरता

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना कदापि नहीं था। वैसे साधारण परिवार में महिलाओं को साहित्य और ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। आपत्तिकाल में हिन्दू नारी अपने और अपने पुत्रों के भरण-पोषण के लिए कातने और बुनने का काम कर सकती थी।[89] पालि साहित्य में ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिससे विदित होता है कि पत्नियाँ कताई-बुनाई के द्वारा परिवार की जीविकोपार्जन कर लिया करती थीं।[90] अर्थशास्त्र के सूत्राध्यक्षः अध्याय में कौटिल्य कहता है 'ऊन, बल्क, कपास, सेमल, सन और जूट आदि को कतवाने के लिए विधवाओं, अंगहीन स्त्रियों, कन्याओं, संयासिनों, सजायाफ्ता स्त्रियों, वेश्याओं की खालाओं, बूढ़ी दासियों और मंदिर की

दासियों को नियुक्त करना चाहिए।[91] इसी में आगे लिखा है, 'कम ज्यादा सूत कातने वाली महिलाओं को उनके कार्य के अनुसार ही वेतन देना चाहिए।[92] नौवी शताब्दी तक विधवाओं के द्वारा सूत कातकर जीवन निर्वाह करने के प्रमाण हमारे सम्मुख आते हैं।[93] महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता का सिद्धान्त वैसे तो अर्वाचीन है, तथापि कताई-बुनाई का जीविका का छोटा सा साधन 19वीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय महिलाओं को उपलब्ध रहा है। कताई-बुनाई के अतिरिक्त कभी-कभी स्त्रियाँ नृत्य तथा संगीत को भी आजीविका का साधन बना लेती थीं।[94] वैदिक नारियों के संगीत एवं नृत्यादि में अभिरुचि के संकेत ऋग्वेद,[95] शतपथ ब्राह्मण,[96] तैत्तरीय[97] तथा मैत्रायणी[98] आदि संहिताओं में भी सहजता से प्राप्त हो जाते हैं। बौद्ध युगीन ग्रंथों से विदित होता है कि ललित कलाओं के अतिरिक्त कन्याओं को अन्य लाभदायक उद्योग धन्धों यथा कताई-बुनाई, सिलाई आदि की शिक्षा दी जाती थी, जो आवश्यकता पड़ने पर उनके जीविकोपार्जन के साधन बनते थे।[99] अध्ययन अध्यापन का कार्य भी महिलाओं विशेषकर ब्राह्मण महिलाओं के द्वारा करवाया जाता था।[100] परन्तु यह उनकी आजीविका का साधन था अथवा नहीं, स्पष्टतापूर्वक नहीं कहा जा सकता। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद की टीका में अनेक स्त्रियों को कृषि कर्म करते, सूत कातते तथा कपड़ा बुनते दिखाया गया है।[101]

## उपसंहार

हमने अपने अध्ययन में देखा कि पूर्व वैदिक काल में पुत्रियों का उपनयन संस्कार होता था, तदन्तर वो ब्रह्मचारीणियों की भाँति शिक्षा प्राप्त करती थीं। सूत्र युग में प्रमाण मिलते हैं कि स्त्री का समावर्तन संस्कार भी होता था। अर्थात उसकी शिक्षा बालकों के समान ही सुचारु रूप से पूर्ण होती थी। परंतु स्मृति काल तक आते-आते स्त्री शिक्षा पर प्रतिबन्धों का अधिरोपण होने लगा। मनु ने कहा है कि स्त्रियों का विवाह ही उपनयन है। इसका औचित्य यही हुआ कि जिस आयु में शिक्षा प्रारंभ होने का विधान था, उस आयु में बालिका का विवाह किया जाने लगा। कालान्तर में शूद्रों के समान वेदों के पठन पाठन और यज्ञों में सम्मिलित होने के अधिकार से भी वह वंचित कर दी गयी। तब शिक्षण संस्थाओं में जाकर ज्ञान प्राप्त करना कन्या के लिए अतीत की बात हो गयी। पूर्व मध्य युग तक आकर नारी शिक्षा का प्रसार अवरुद्ध हो चुका था, किन्तु अभिजात वर्ग में सुसंस्कृत और सुबोध स्त्रियों की कमी नहीं थी।

1. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः। श.ब्रा. 5-1, 6-10
2. ऋग्वेद, 8.31 या दम्पत्ति सुभनसा आ च धावतः। देवो सो नित्यया शिरा।
3. पा.गृ.सू. 2.20, स्त्रियश्चोपयजेरम्ना परित्वात।
4. पत्युर्नो यज्ञ संयोगे। पाणिनी 4-1-33
5. पारा. गृ.सू. 3-2 एवं हरिहर की टीका
6. महाभारत, 3.305-20
7. अथर्ववेद, 11.5.18
8. रामायण 2-20-15, स क्षोमवसना दृष्या नित्यं व्रतवरायणा।
   अग्नि जुहोति सम तदा मंत्रविस्कृतमंगला।।
9. रामायण 4-16-12, ततः स्वस्त्यनं कृत्वा मंत्रविद्विजयैषिणी।
10. अथर्ववेद 11-5-18, ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
11. मनुस्मृति 2-66
12. रामायण 7-17, कुशध्वजों नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभः।
    वृहस्पति सुतः श्रीमान बुद्धया तुल्यो बृहस्पतेः।।
13. महाभारत 4.1.14, 3.155 एवमपि काशकृत्स्निना प्रोक्ता मीमांसा काशकृत्स्नी।
    काशकृत्स्नीमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी।।
14. बृह. उप. 2-4; 4-5, सा होवाच मैत्रेयी। येनाहं नामृता स्याम् किं तेनाहं कुर्यामिति।
15. बृह. उप. 3-6, 1, अनतिपृश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि।
16. उत्तररामचरित अंक 2, तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्त शिक्षाम् बाल्मीकि पार्श्वादिह संचाराभि।
17. रामायण 2.20.75; 5.15.48
18. अश्वलायन गृह. सूत्र 3-4, 4
19. हार्नर कृत वीमेन अण्डर प्रमिटिव बुद्धिज्म, दूसरा अध्याय
20. जातक संख्या 301
21. यम स्मृति, पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः।
22. पतंजलि, 3.822, उपत्याधीते अस्याः सा उपाध्याया।
23. पाणिनि, 6.2.46 छायादयः शालायाम्।
24. वायु पुराण 66.27, ब्रह्माण्ड पुराण 3.2.28
25. वायु पुराण 72.13-15, ब्रह्माण्ड पुराण, 3.10.15-16
26. विष्णु पु. 3.10.19, वायु पुराण 30.28-29, ब्रह्माण्ड पुराण 21.13.30
27. मत्स्य पुराण, 20.27
28. मत्स्य पुराण 4.24 या सा देहार्द्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी।
    शतरूपा शतेन्द्रिया ——————————।।
29. मत्स्य पुराण 154, 290.294-301, 308-309;
    वायु पुराण, 41.31 तपस्तप्तवती चैव यत्र देवी वरांगना।
    मत्स्य पुराण, 15.5-6 एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता।
    योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम्।।

30. ऋग्वेद 8.91.5-6
31. ऋग्वेद 1.2.36; 2.32.4
32. ऋग्वेद 1.92.4; 10.71.11
33. तै.स., 6.1.6.5, श. ब्रा., 14.3.1.35
34. मत्सय पुराण 82.29 नारी व कुरूते या तु विशोक द्वादशीव्रतम्।
    नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात।।
    मत्स्य पुराण 131.9
35. विष्णु पुराण 2.10.20 नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्पनु निशाचरा:।
    विष्णु पुराण 5.32.22 तत: पटे सुरान्दैत्यानगन्धर्वाश्च प्रधानत:।
    मनुष्यांश्च विलिख्यास्यै चित्रलेखा व्यदर्शयत।।
36. उत्तररामचरित अंक - 2
37. मालती माधव अंक-1, अपि किं न वेत्सि यदेकत्र नो विद्यापरिग्रहाय
    नाना दिगन्तिवासिनां साहचर्यमासीत्।
38. कामसूत्र 3.5.30. सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह।
    अनुरागात्मकत्वाच्च गांधर्व: प्रवरो मत:।
    बोधा. धर्म. सू. 1.11-13.7, गांधर्वमष्येके प्रशंसति सवेषां स्नेहानुगतत्वात्।
39. बृ.उ. 6-4.17. अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति
    तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्।
40. गो. गृ. सू 2-1 .21 तथा जै. गृ. सू, 1-20
41. तैत्तरीय संहिता, भाष्योपोद्धात पृ. 2, प्रत्यक्षेणानुमित्या वा वास्तुपायो न बुध्यते।
    एवं विदन्ति तस्माद् वेदस्य वेदता।।
42. वही
43. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृ. 161
44. मनुस्मृति 2-66.
45. वीर मित्रो. पृ. 402 पर हारीत का वचन, स्मृतिचन्द्रिका पृष्ठ 62
46. मनुस्मृति 2-56 अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषत:।
    मनुस्मृति 9-18 नास्ति स्त्रिणां क्रिया मंत्रैरिति धर्मे व्यवस्थिति:।
47. वही, 2.67 वैवाहिको विधि: स्त्रीणां संस्कारो वैदिको मत:।
48. याज्ञवल्क्य
49. यम का उद्धरण, संस्कार प्रकाश 1-13
50. पुराणतंत्र, वी.मि. परिभाषा पृ. 40, वदन्ति केचिन्मुनय: स्त्रीणां शूद्रसमानताम्।
51. मनुस्मृति 9.90
52. मिताक्षरा
53. महाभारत 13.44 तथा 14.16
54. रामायण 3.447 तथा 10

55. याज्ञवल्क्य 1.13, अप्रयच्छन्तमाप्नोति भ्रूणहत्यामृतौ धृतौ।
56. भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास, विमलचन्द्र पाण्डेय, पृष्ठ 104
57. वही
58. ऋग्वेद 1.179
59. ऋग्वेद 5.28
60. ऋग्वेद 28.91
61. ऋग्वेद 09.81
62. ऋग्वेद 10.39.40
63. गाथा सप्तशती 1-87 तथा 90
64. गाथा सप्तशती 2-63
65. गाथा सप्तशती 1-91
66. गाथा सप्तशती 3-28, 63, 74, 76
67. गाथा सप्तशती 1-70
68. गाथा सप्तशती 1-86
69. गाथा सप्तशती 4-4
70. काव्यमीमांसा, अध्याय 10
71. काव्यमीमांसा, अध्याय 10, सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विलास भूः।
    प्रभूर्देवी कवी लाटी गतापिहृदि तिष्ठति।।
72. काव्यमीमांसा, अध्याय 10, सरस्वती कर्णाटी विजयांका जयत्यसौ।
    या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम्।।
73. काव्यमीमांसा अध्याय 10 राजशेखर, नीलोत्पलदलश्यामां विजयांकामजानता।
    वृथैव दण्डिनाप्युक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती।।
74. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, पृष्ठ 165
75. शारंग पा. शीला विज्जामाल्लामोरिकाद्याः काव्यं कर्त्तुम् संति विज्ञाः स्त्रियोऽपि।
    विद्यां वेत्तुम् वादिनो निर्विजेंतु विश्वं वक्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः।।
76. काव्यमीमांसा, अध्याय 10, पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खुलं सुभद्रया।
    कवीनां च वचोवृत्ति चातुर्येण सुभद्रया।।
77. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, कल्तेकर, पृष्ठ 166
78. शंकर दिग्विजय 8-51, विधाय भार्या विदुषीम् सदस्यां विधीयतां वादकथा सुधीन्द्र।
79. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृष्ठ 166।
80. वही
81. अरब और भारत के सम्बन्ध, नदवी, पृष्ठ 122
82. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, कल्तेकर, पृष्ठ 27
83. वही
84. महाभारत

85. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृष्ठ 27
86. भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास, विमलचन्द्र पाण्डेय, पृष्ठ 117
87. वही
88. कामसूत्र 1.1.16
89. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अल्तेकर, पृष्ठ 168
90. वही
91. अर्थशास्त्र 2.23.2 ऊर्णावल्क कार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यंगाकन्या प्रवजिता दण्डाप्रतिकारिणीभी रूपाजीवामातृकाभिर्वृद्धराजदासीभिव्यंपरतोपस्थान देवदासीभिश्च कर्तयेत।
92. अर्थशास्त्र 2.23.3 श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत।
93. मनु 5.157 पर मेधतिथि, मृतपतिकाया अनपत्याया असति भर्तृधनादौ दायिके च कर्तनादिना केनचिदुपायेन जीवन्त्या।
94. जातक 529
95. ऋग्वेद 10.71.11. ऋचां त्वं पौषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीष।
96. शत. ब्रा. 14.3.1.35, पत्नीकमैव वे तऽत्र कुर्वन्ति यदुद्गातार:।
97. तैत्ति. सं. 6.1.6.5.1
98. मैत्रा. सं. 3.7.3
99. अंगुतर निकाय 3 पृष्ठ 293– कुशलाहं गहपति कप्पासं कंतितुं वेणि मौलिखितुं संवकाहंगध यति तवच्चयेन दारके पौसितुम।
100. महाभाष्य, पतंजलि भाग 3, पृष्ठ 205, आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपशला ब्राह्मणी। एवं भारत वर्ष सामाजिक इतिहास, विमलचन्द्र पाण्डेय, पृष्ठ 116
101. धम्मपद टीका 113

## ***संदर्भ***


अंगुतर निकाय (1883–1900) संपादक आर. मोरिस एवं डी.हार्डी, लंदन

अथर्ववेद (1938) : संपादक श्रीपाद शर्मा, औधनगर

अल्तेकर (1955) प्राचीन भारतीय शिक्षण संस्थाएँ, बनारस

अश्वलायनगृह सूत्र (1894) नारायण की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

उत्तर रामचरित्र :

कौटिल्य का अर्थशास्त्र : डॉ. राम शास्त्री एवं गणपति शास्त्री

गाथा सप्तशती :

गोभिल गृह सूत्र : बिब्लियोथिका इंडिका सीरीज

जातक (1895–1913) भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जैमनीय गृह सूत्र :

तैत्तरीय संहिता (1945), श्रीपाद शर्मा, औधनगर
देवणभट्ट की स्मृति
चंद्रिका (1914–1921), एल. श्रीनिवासाचार्य, मैसूर
धम्मपद टीका (1937), राहुल साकृत्यायन, रंगून
पतंजलि का महाभाष्य : एफ कीलहार्न, बम्बई
पाणिनि का अष्टाध्यायी (1929), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
पारासर गृह सूत्र (1917), गुजराती प्रेस संस्करण
बृहदारण्यक उपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर
ब्राह्मण पुराण : कलकत्ता
विष्णु पुराण (1966), बीस स्मृतियाँ, बरेली
बौधायन धर्मसूत्र (1907), आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
मत्स्य पुराण (1907), आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
मनुस्मृति (1932), मेघातिथि की टीका के साथ, कलकत्ता
महाभारत (1929–33), नीलकण्ठ की टीका के साथ, पूना
मित्र मिश्र कृत वीर
मित्रोदय (1906), वाराणसी, जीवानन्द संस्करण
मैत्रायणी संहिता :
यम स्मृति :
याज्ञवल्क्य स्मृति (1926), जे.आर. घरपुरे, बम्बई
राजशेखर की काव्यमीमांसा (1946), कलकत्ता
रामायण : गीता प्रेस गोरखपुर
वायु पुराण (1907), आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
विमलचन्द्र पाण्डेय (1960), भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, इलाहाबाद
विज्ञानेश्वर का मिताक्षरा (1905), याज्ञवलक्य स्मृति पर भाष्य, बम्बई
शतपथ ब्राह्मण (1994–97), अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, वाराणसी
वात्स्यायन का कामसूत्र : चौखम्बा सीरीज, वाराणसी
हार्नर : वीमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म
ऋग्वेद (1933–1951), वैदिक संशोधन मण्डल, पूना

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का वातावरण और अभिभावकों तथा विद्यार्थियों की प्रत्याशाएं

**पारथ प्रसाद*** और **मधु कुशवाहा****

### सारांश

*सर्व शिक्षा अभियान तथा शिक्षा के अधिकार के कानून (आर.टी.ई.) के लागू होने से प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन दर में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी हुई है। उच्च नामांकन दर के कारण सरकारी स्कूलों पर दबाव पड़ा है कि वे बच्चों को रोके रखें और उनके अभिभावकों की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। ऐसी स्थिति में यह देखना समीचीन होगा कि क्या सरकारी विद्यालयों का वातावरण (इथॉस) अभिभावकों व विद्यार्थियों की प्रत्याशाओं को पूरा करने में सहायक है? एक स्कूल का इथॉस स्कूल समुदाय के स्पिरिट तथा विश्वास के अपूर्व लक्षणों से मिलकर बना होता है और अकादमिक व शैक्षिक महत्वाकांक्षाओं के द्वारा प्रदर्शित होता है। यह विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा अभिभावकों का स्कूल के बारे में सामूहिक व साझा विश्वास है जिसको विकसित होने में लम्बा वक्त लगता है। यह विद्यार्थियों से अध्यापकों की प्रत्याशा तथा विद्यार्थियों व स्कूलों से अभिभावकों की प्रत्याशा में वृद्धि करता है। इस धारणा को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन में वाराणसी शहर के समृद्ध इलाके में स्थित एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय के इथॉस का अध्ययन किया गया है। इस विद्यालय में मुख्य रूप से पास की स्थित मलिन बस्ती से विद्यार्थी आते हैं।*

## प्रस्तावना

वर्ष 2000 में सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत की गई तथा इसके तीन मुख्य लक्ष्य निर्धारित किये गये– 6–14 वर्ष आयु वर्ग के समस्त बच्चों को वर्ष 2010 तक स्कूलों, शिक्षा गारंटी

* यू.जी.सी. एस.आर.एफ. (शोध छात्र), शिक्षा संकाय, बी.एच.यू., वाराणसी
** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, बी.एच.यू., वाराणसी

योजना केन्द्रों, ब्रिज पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करना, समस्त प्रकार के भेदभाव प्राथमिक शिक्षा से 2007 तक तथा बुनियादी शिक्षा से 2010 तक समाप्त करना, प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता पर बल देते हुए 2010 तक सभी को शिक्षा मुहैया कराना। इसी संदर्भ में भारतीय बच्चों के लिए अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के अधिकार का कानून 'द राइट ऑफ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपलसरी एजुकेशन एक्ट, 2009'। अप्रैल 2010 से पूरे देश में सिद्धांतत: लागू कर दिया गया। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी शुरुआती हिचकिचाहट के बाद अगस्त 2011 से इस कानून को लागू कर दिया है। एम.एच.आर.डी. के नवीनतम आँकड़ों के अनुसार स्कूल में नामांकन दर लगभग 98 प्रतिशत तक पहुँच गई है लेकिन इसके साथ ही कक्षा 1 से 8 तक सभी वर्गों के विद्यार्थियों द्वारा विद्यालय छोड़ने का प्रतिशत 48.80 है।

उच्च नामांकन दर तथा विद्यार्थियों द्वारा स्कूल छोड़ने की दर में बढ़ोत्तरी इस बात का सूचक है कि विद्यार्थी स्कूल तो पहुँच रहे हैं। लेकिन स्कूल विद्यार्थियों को रोकने में असमर्थ हो रहे हैं। उच्च नामांकन दर से स्पष्ट है कि इस संदर्भ में सरकारी स्कूलों पर भी दबाव बना है कि वे बच्चों को स्कूल लाएँ, उनको रोके रखें और उनके अभिभावकों की न्यूनतम प्रत्याशाओं को पूरा कर सकें।

सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों व शिक्षकों की सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पहचान में बहुत खाई है। आज की स्थिति यह है कि सरकारी विद्यालयों में लगभग 95 प्रतिशत विद्यार्थी वंचित वर्गों, निम्न जातियों व पहली पीढ़ी के सीखने वाले हैं। वहीं शिक्षक मुख्यत: शहरी व ग्रामीण मध्य वर्ग से आते हैं। इन विद्यालयों के घर और पड़ोस का वातावरण शिक्षा के लिए न तो सहायक होता है और न ही प्रेरणादायी। अत: इस अभाव को पूरा करने के लिए एक सुंदर व स्वस्थ वातावरण प्रदान करना स्कूल का कर्तव्य हो जाता है, पर वास्तविक व्यवहार में हम इस आदर्श से बहुत दूर हैं। पहली बार पढ़ने का अवसर मिलने पर विद्यार्थी व अभिभावक उत्साहित हैं। ऐसी स्थिति में यह देखना समीचीन होगा कि क्या सरकारी विद्यालयों का वातावरण (इथॉस) अभिभावकों व विद्यार्थियों की प्रत्याशाओं को पूरा करने में सहायक है? इसके लिए पहले हमें स्कूल वातावरण (इथॉस) क्या है और किसी भी स्कूल के लिए यह क्यों महत्वपूर्ण है, इसे समझना होगा।

## स्कूल वातावरण (इथॉस)

विभिन्न स्कूलों में समान पाठ्यक्रम व समान मापदण्डों के होते हुए भी उनकी शैक्षिक गुणवत्ता में अन्तर होता है। ऐसा क्यों है? इसका उत्तर विद्यालय के शैक्षिक वातावरण से संबंधित है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में स्पष्ट कहा गया है कि विद्यालयी

वातावरण तथा विद्यार्थियों की अकादमिक निष्पत्तियों में गहरा संबंध है। इथॉस वे विश्वास और अभ्यास हैं जिनको स्कूल अपनाते हैं और जिनके द्वारा संचालित होते हैं।

हम स्कूल के अन्दर कुछ समय के लिए जाते हैं तथा स्कूल के बारे में जो कुछ अनुभव करते हैं, वही उस स्कूल के इथॉस को अभिव्यक्त करता है। *(टॉरिंग्टन तथा वेटमैन, 1989)।'*

एक स्कूल का इथॉस स्कूल समुदाय के स्पिरिट तथा विश्वास के अपूर्व लक्षणों से मिलकर बना होता है और अकादमिक व शैक्षिक महत्वाकांक्षाओं के द्वारा प्रदर्शित होता है। स्कूल में व्यक्तिगत संबंधों की प्रकृति, सामाजिक अभिवृत्ति व उत्तरदायित्व इसे प्रभावित करते हैं। स्कूल इथॉस कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है– राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ : स्थानीय समुदाय की प्रकृति : अभिभावक, अध्यापक और विद्यार्थी जो स्कूल में उपस्थित होते हैं, तथा इन विभिन्न कारकों के मध्य संबंध। 'स्कूल इथॉस का प्रत्यक्षण किस प्रकार होता है और कैसे इसे व्यवहार में लाया जाता है, यह महत्वपूर्ण है *(रटर, 1974)*। अर्थात् विद्यालय के समस्त हितधारक (स्टेकहोल्डर) विद्यालय को किस तरह से देखते हैं और विद्यालय के बारे में कैसा महसूस करते हैं?

ग्राहम (1998) तथा फिशर (1999) ने स्कूल इथॉस का विस्तृत अध्ययन करके इसके निम्नलिखित पक्ष बताए हैं – एक साझा दृष्टि तथा उद्देश्य, साझा विश्वास, विद्यार्थी सहभागिता सम्प्रेषण, नेतृत्व क्षमता तथा समूह में काम करने की भावना आदि। इस संबंध में विभिन्न अध्ययन महत्वपूर्ण रोशनी दिखाते हैं। लिकोना (1991), डेकिन (2002) तथा मिलन (2006) ने अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के अन्तर्सम्बन्धों के आधार पर सकारात्मक स्कूल इथॉस को चिन्हित किया। काटजे (1998) तथा जोन्स (2006) ने पाया कि स्कूल इथॉस अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की उत्तरदायित्वता पर निर्भर रहता है। डोनेली (1999) ने स्कूल द्वारा प्रस्तावित इथॉस तथा स्कूल में अन्त:क्रिया द्वारा उभरे इथॉस का परीक्षण करके बताया कि स्कूल इथॉस समुदाय से सीधे जुड़े होते हैं। कोवान (2004) ने अपने अध्ययन में पाया कि सकारात्मक स्कूल इथॉस अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के बीच धनात्मक संबंध, अपने स्कूल पर गर्व, अपने स्कूल से जुड़े रहने की भावना, स्कूल के मूल्य तथा स्कूल समुदाय जैसे कारकों पर निर्भर होता है।

नूगेण्ट तथा मूनी (2008) ने बताया कि स्कूल इथॉस की कुंजी लोकतांत्रिक भावना और अभिभावकों की स्कूल में उच्च स्तर पर सहभागिता हैं। सीखने की प्रक्रिया सामाजिक संबंधों के ताने-बाने में लगातार चलती रहती है। चेतन और अचेतन रूप से

बच्चे संरचित या असंरचित समय में अपने विद्यालय के वातावरण (इथॉस) से निरंतर अत:क्रिया करते रहते हैं।

स्कूल इथॉस कोई ऐसी चीज नहीं है जो रातोंरात परिवर्तित हो जाए। यह विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा अभिभावकों को स्कूल के बारे में सामूहिक व साझा विश्वास है, जिसको विकसित होने में एक लम्बा वक्त लगता है। यह विद्यार्थियों से अध्यापकों की प्रत्याशा तथा विद्यार्थियों व स्कूलों से अभिभावकों की प्रत्याशा में वृद्धि करता है। इस धारणा को ध्यान में रखकर शोध कार्य हेतु वाराणसी शहर के समृद्ध इलाके में स्थित एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय के स्कूल वातावरण (इथॉस) का अध्ययन किया गया। इस प्राथमिक विद्याल्य में मुख्य रूप से पास में स्थित मलिन बस्ती से विद्यार्थी आते हैं।

## अध्ययन का उद्देश्य

अभिभावकों व विद्यार्थियों की प्रत्याशा के संदर्भ में सरकारी प्राथमिक विद्यालय के इथॉस का अध्ययन करना।

**स्कूल इथॉस की संक्रियात्मक परिभाषा :** स्कूल इथॉस एक बहुत ही विस्तृत अवधारणा है तथा इसका क्षेत्र भी व्यापक है। प्रस्तुत अध्ययन में स्कूल इथॉस के तीन पक्ष लिये गये हैं:

- अभिभावकों व विद्यार्थियों की विद्यालय से प्रत्याशा,
- विद्यार्थियों के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण तथा
- विद्यार्थियों की स्कूल से जुड़ने की अनुभूति

## अध्ययन की विधि

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक अनुसंधान विधि पर आधारित है। वैयक्तिक अध्ययन, आभासी सहभागी अवलोकन तथा अर्द्ध संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से आँकड़ों को एकत्रित किया गया।

## अनुसंधान प्रक्रिया

आंकड़ों के संग्रहण का कार्य 2010-11 सत्र में किया गया। सर्वप्रथम अध्ययन इकाई के रूप में विद्यालय का चुनाव किया गया। इसके बाद स्कूल की गतिविधियों का सहभागी अवलोकन किया गया तथा स्कूल स्टॉफ, विद्यार्थियों तथा अभिभावकों के विचारों को जानने के लिए अर्द्धसंरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से विस्तृत साक्षात्कार लिया गया। इसके लिए टेप रिकार्डर का प्रयोग किया गया। आँकड़े वृतान्त के रूप में मिले जिनका विषयवार विश्लेषण किया गया।

## अध्ययन की इकाई

शोध-कार्य के लिए वाराणसी शहर के समृद्ध इलाके में स्थित एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया।

## स्थिति

यह स्कूल शहर के दक्षिण में स्थित प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय के समीप पॉश कालोनी में स्थित है। स्कूल मुख्य सड़क से जुड़ा हुआ है। स्कूल के पास एक मलिन बस्ती व प्रसिद्ध मन्दिर है।

## विद्यार्थी

सत्र 2010-11 में इस स्कूल में नामांकित कुल विद्यार्थियों की संख्या 80 थी, जिनमें से 72 विद्यार्थी मलिन बस्ती से तथा 8 अन्य जगह से आते हैं। स्कूल में अनुसूचित जाति वर्ग के विद्यार्थियों की बहुलता है।

**तालिका-1**

**विद्यार्थियों का विवरण (सत्र 2010-11)**

| कक्षा | विद्यार्थियों की संख्या | सामाजिक वर्ग | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | सामान्य | | अन्य पिछड़ा वर्ग | | अनुसूचित जाति | |
| | | छात्र | छात्राएं | छात्र | छात्राएं | छात्र | छात्राएं |
| 1 | 14 | 01 | 01 | 02 | 01 | 07 | 02 |
| 2 | 23 | 02 | | 03 | | 12 | 06 |
| 3 | 29 | | 01 | 02 | 01 | 15 | 10 |
| 4 | 07 | | | 03 | | 03 | 01 |
| 5 | 07 | | 02 | 01 | | 01 | 03 |
| **कुल** | **80** | **03** | **04** | **11** | **02** | **38** | **22** |

## शिक्षण स्टॉफ

स्कूल में प्रधानाध्यापक तथा दो शिक्षा मित्र हैं। स्कूल में आंगनबाड़ी केन्द्र भी संचालित होता है। प्रधानाध्यापक पिछले 30 वर्षों से अध्यापन कार्य में संलग्न हैं तथा अल्पसंख्यक वर्ग से आते हैं। एक शिक्षा मित्र स्कूल में ही अपने परिवार के साथ रहते हैं। उन्हें अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति मिली है। दूसरी शिक्षा मित्र पास के ही क्षेत्र से आती हैं।

## अभिभावक

अभिभावकों में अधिकतर नगर निगम में काम करते हैं। इसके अतिरिक्त रिक्शा चालक व सुरक्षागार्ड भी हैं। अधिकतर विद्यार्थियों (कुल 60) के माता-पिता दोनों कामकाजी है। अधिकतर मातायें भी नगर निगम में काम करती हैं।

## समय सारिणी तथा विद्यार्थियों की उपस्थिति

स्कूल ग्रीष्मकाल (1 अप्रैल – 30 सितंबर) में सुबह 7 से 12 बजे तक तथा शीतकाल (1 अक्तूबर – 31 मार्च) में सुबह 10 बजे से 4 बजे तक चलता है। सामान्यतया विद्यार्थियों की उपस्थिति ठीक रहती है। केवल ग्रीष्मकाल में उपस्थिति कुछ कम हो जाती है।

## विश्लेषण

शोधार्थियों ने स्कूल इथॉस के अध्ययन के लिए तीनों पक्षों का विषयवार विश्लेषण किया—

## अभिभावकों व विद्यार्थियों की विद्यालय से प्रत्याशा

प्रत्येक सरकारी विद्यालय में वार्ड शिक्षा समिति, अभिभावक-अध्यापक समिति तथा मातृ-अध्यापक समिति का प्रावधान है, जिनका उद्देश्य अभिभावकों तथा समुदाय को स्कूल ले जाना व स्कूल को समुदाय से जोड़ना होता है, जिससे समुदाय जाने कि उनके बच्चों को स्कूल क्या सिखा रहा है तथा स्कूल समुदाय की न्यूनतम आवश्यकताओं को समझ सके, जिससे उचित शैक्षिक वातावरण का निर्माण किया जा सके।

पूरे सत्र के दौरान एक दो अवसरों को छोड़कर कोई अभिभावक कभी स्कूल में नहीं मिला (ये अक्सर छात्रवृत्ति से संबंधित थे)। जुलाई माह में प्रधानाध्यापक तथा शिक्षा मित्र ने मलिन बस्ती पहुँचकर सर्वे किया क्योंकि सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत 'स्कूल चलो अभियान' कार्यक्रम के लिए ऐसा आवश्यक था। इसके बाद यह संयोग कभी नहीं हुआ कि शिक्षण स्टाफ समुदाय के पास गया हो या अभिभावक ही स्कूल आये हों।

शोध के दौरान 41 विद्यार्थियों के माता-पिता से अलग-अलग बातचीत की गयी सभी अभिभावक अपने बच्चों को स्कूल जाने के लिए कहते हैं। लेकिन वे ये नहीं देख पाते कि वे पढ़ रहे हैं या नहीं (सभी अभिभावक कामकाजी हैं तथा 7 को छोड़कर सभी निरक्षर हैं सभी अभिभावक अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं, उनकी न्यूनतम प्रत्याशाएँ हैं — बच्चा लिखना-पढ़ना सीख जाए।

एक अभिभावक का कहना था— ''लड़का नाम लिखना सीख जाए, अनपढ़ नहीं कहलाए, कम से कम स्कूल उसे इतना सिखा दे कि चिट्ठी वगैरह अच्छी तरह से पढ़ ले, कुछ लिखना सीख जाए, हिसाब-किताब कर ले ताकि कोई उसे बेवकूफ न बना पाए।

एक अभिभावक का कहना था– ''आजकल तो पढ़ने में काफी सुविधाएँ मिल रही हैं, हम लोग चाहते हैं कि ये कम से कम 10वीं तक ही पढ़ जाए ताकि सरकारी नौकरी (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी) मिल जाए, लेकिन आप खुद देखिए कि मास्टर लोग पढ़ाते ही नहीं हैं। इससे अच्छा है कि घर बैठ जाए।''

स्कूल की तरफ से कभी कोई कोशिश नहीं की जाती कि अभिभावक स्कूल तक आये, जबकि इससे संबंधित रजिस्टर हमेशा भरे रहते हैं। स्कूल अभिभावकों की न्यूनतम प्रत्याशा-बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता का विकास करना – को भी पूरा करने में असमर्थ हो रहा है, जिससे अभिभावकों में उदासीनता है। वो अपने बच्चों से काम भी नहीं कराना चाहता, उसे स्कूल भेजता है। वहीं स्कूल इस अवसर को भी हाथ से निकल जाने दे रहा है।

एक अभिभावक के विचार थे– ''अभी हम बच्चों को स्कूल भेजते हैं, ताकि वे पढ़ें, लिखें। बाहर काम करने की भी उम्र होती है। अभी तो ये अधिक से अधिक पढ़ जायें।''

अभिभावकों की प्रतिक्रिया से स्पष्ट है कि उनकी आशाएँ बहुत ज्यादा महत्वाकांक्षी नहीं हैं और वे चाहते हैं कि स्कूल सामान्य किस्म की संज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास विद्यार्थियों में करें। परन्तु विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को देखकर लगता है कि स्कूल इन आशाओं को पूरा नहीं कर पा रहे हैं, जिसकी वजह से अभिभावकों का आरम्भिक उत्साह उदासीनता में बदल जाता है।

विद्यार्थियों की कम उपस्थिति के बारे में एक अभिभावक का कहना था– ''क्या करेगा रोज-रोज स्कूल जा के। वहाँ कुछ पढ़ता तो नहीं। ये कक्षा-4 में पढ़ता है, स्कूल वाले इसे इसका नाम तक लिखना नहीं सिखा पाये।''

## विद्यार्थियों के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण

शोध के दौरान विद्यार्थियों के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण जानने की कोशिश की गई। शिक्षक मानते हैं कि ऐसे बच्चों को पढ़ाकर कुछ नहीं करना है, इन्हें पढ़ाना बेकार है।

### प्रधानाध्यापक जी का कहना था–

''इनको क्या लिखना-पढ़ना। ये सब तो यहाँ खेलने व खाने आते हैं। जब वजीफा मिलना होता है तो सब आ जायेंगे। जिनको पढ़ना लिखना है वो सब दूसरे ढंग के होते हैं।'' (बहुत कोशिश करने पर भी उन्होंने दूसरे ढंग को नहीं बताया)

ऐसे ही विचार दोनों शिक्षा मित्रों के भी थे। ये उदासीनता ही सरकारी विद्यालयों को

अनाकर्षक बनाने के लिए बहुत हद तक उत्तरदायी है। इसी ने शहरी मध्य वर्ग को सरकारी विद्यालयों से बहुत दूर खड़ा कर दिया है।

स्कूल में कक्षा अवलोकन में यह देखा गया कि शिक्षक बच्चों द्वारा कुछ पूछने पर बार-बार झिड़कते हैं। शोधार्थी के पास एक छात्रा कापी लेकर आयी।

''सर जी मुझे मेरा नाम लिखना सिखा दीजिए।''

ये छात्रा कक्षा 3 में पढ़ती है।

यह स्थिति बहुत विरोधाभास दिखाती है। एक तरफ प्रधानाध्यापक का कहना है कि ये बच्चे पढ़ने की कोई इच्छा नहीं रखते। वहीं दूसरी तरफ यह छात्रा पढ़ना चाहती है उसकी न्यूनतम प्रत्याशा है कि वो अपना नाम लिखना सीख जाए। स्कूल इसे भी पूरा करने में असमर्थ हो रहा है।

दूसरी छात्रा ने कहा, ''सर जी वे (शिक्षक) नहीं बताएँगे, मारेंगे और कहेंगे अ, आ, लिखकर लाओ''।

यह स्थिति बताती है कि विद्यार्थियों में प्रश्न पूछने को लेकर एक भय व्याप्त है जो उन्हें प्रश्न लेकर शिक्षकों तक नहीं पहुँचने देता।

ये छात्राएँ चुपचाप अपने जगह जाकर बैठ गयीं। विद्यार्थी चुपचाप कक्षा में बैठे रहते हैं, या आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। जबकि शिक्षक या तो बातों में लगे रहते हैं या रजिस्टरों में खोये रहते हैं। जब तक स्कूल की संस्कृति व शिक्षकों का व्यवहार छात्रों के प्रति सकारात्मक नहीं होगा व विद्यार्थियों की अस्मिता को 'शिक्षार्थियों' की तरह उजागर नहीं किया जाएगा तब तक प्रत्येक विद्यार्थी की रुचि और क्षमताओं को बढ़ावा देने संभव नहीं होगा। शिक्षक समाज के हाशिए पर खड़े बच्चों के साथ भेदभाव करते हैं। विभिन्न असमर्थताओं वाले बच्चों के साथ असहिष्णु व्यवहार हो रहा है तथा उनकी जरूरतों की पूरी तरह उपेक्षा की जा रही है।

## विद्यार्थियों की स्कूल से जुड़ने की अनुभूति

शिक्षकों की उदासीनता, अभिभावकों की न्यूनतम प्रत्याशाओं की स्कूलों द्वारा उपेक्षा या पूरी करने में असमर्थता, बच्चों का सहमा रहना, शिक्षकों द्वारा कथित काम के बोझ का बहाना जैसे कई कारण सरकारी स्कूलों में नामांकन के लिए जिम्मेदार हैं। छात्र, छात्राएँ स्कूल से कोई जुड़ाव महसूस नहीं करते। अभिभावकों की बदहाली उन्हें सरकारी विद्यालय भेजती है।

अधिकांश शिक्षक ये भूल चुके हैं कि शिक्षक का मुख्य कार्य अध्यापन है। सरकारी आजादीपन शिक्षकों को भाता है। आप केवल एक घंटे के लिए किसी भी समय स्कूल जाइए, आप दोनों पक्षों की उदासीनता देख सकते हैं।

कक्षा-3 की एक छात्रा का कहना था – ''सर जी क्या करें, रोज-रोज स्कूल जाकर जैसे वहाँ बैठना है व भैया जी की मार खाना है, उससे अच्छा घर पर रहकर काम करेंगे तो मम्मी खुश होंगी।

ऐसे ही कारण विद्यार्थी स्कूल से दूर होते जाते हैं, नतीजा स्वरुप उसके अभिभावक भी स्कूल से उसका नाम कटा देते हैं। विद्यार्थी भी मजदूरी या ऐसा ही कुछ काम करके संतुष्ट हो जाता है।

विद्यार्थियों से यह पूछने पर कि तुम्हें अपना स्कूल कैसा लगता है, अधिकांश विद्यार्थियों का उत्तर था- 'स्कूल अच्छा नहीं लगता।'

इसका कारण पूछने पर लगभग सभी विद्यार्थियों का कहना था कि शिक्षक हमें पढ़ाते नहीं हैं, बात-बात पर मारते हैं।

स्कूल के वातावरण में भय व्याप्त है। विद्यार्थी शिक्षकों से डरते हैं। वो शिक्षकों से बात करना चाहते हैं, उन्हें अपनी समस्याएँ बताना चाहते हैं, उनसे प्रश्न पूछना चाहते हैं। लेकिन शिक्षक पहले से मान कर बैठे हैं कि इनको पढ़ना-लिखना नहीं है। इससे विद्यार्थियों की उत्सुकता उदासीनता में बदल जा रही है। उनको अपने स्कूल पर गर्व करने के लिए कोई भी कारण नहीं मिलता, जिससे उनके मन में स्कूल के प्रति नकारात्मक भावना व्याप्त हो गई है, तभी उन्हें अपना स्कूल अच्छा नहीं लगता। वर्तमान में प्रारम्भिक शिक्षा के संख्यात्मक प्रसार के लिए शिक्षा की गुणवत्ता के साथ बड़ा समझौता किया जा रहा है। शिक्षा को जीवन से असंबंधित किए जाने का प्रयास जारी है। अनुदेशनात्मक कार्यक्रम अर्थहीन, अनुपयोगी और अनाकर्षक हैं। सरकारी स्कूलों के विद्यार्थियों की जनांकिकीय पृष्ठभूमि से स्पष्ट है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालय शहरी मध्य वर्ग हेतु अपना आकर्षण खोते जा रहे हैं।

## सुझाव

विद्यालयों में पठन-पाठन के उचित वातावरण (इथॉस) के लिए तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। अभिभावकों की न्यूनतम प्रत्याशाओं – विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमता का विकास (पढ़ना, लिखना, हिसाब-किताब) को पूरा करने के लिए स्कूलों की जवाबदेही सुनिश्चित करके हम विद्यार्थियों, शिक्षकों व अभिभावकों को स्कूल से जोड़ सकते हैं ताकि ये सब जुड़ाव महसूस करके गर्व कर सकें कि हमने कुछ सीखा तथा हमने कुछ सिखाया।

## *संदर्भ*

प्रस्तुत स्कूल का वर्णन शोधार्थी के शोध का एक भाग है।

कोवान, एल., (2004) : डज पाजीटिव स्कूल स्पिरिट एलाऊ स्टूडेंट्स टू इंगेज मोर पाजीटिव इन लर्निंग एण्ड अचीव ग्रेटर सक्सेस, रिट्रीव्ड ऑन, 15 मार्च, 2009 फ्राम http//www.riu.org/uk/ap/waitakingrlsschool.htm.

डेकिन सी.आर. (2002) : ट्रान्सफार्मिंग विजन्स मैनेजिंग वैल्यूज इन स्कूल्स ए केस स्टडी मिडिलसेक्स, लन्दन स्ट्रिीव्ड आन 10 मार्च, 2009 फ्राम http//www.becal.org.uk/ic/policies/managengvalues chapter 4.pdf

फिशर, आर. (1999) : आल्टरनेटिव्स टू एक्सक्लूजन फ्राम स्कूल..... टीचिंग चिल्ड्रेन टू लर्न, न्यूयार्क सेज।

ग्राहम, (1998) : एजुकेटिव इंपोर्टेन्स आफ इथॉस, डेविस स्मिथ (2008) में उद्धृत स्कूल इथॉस : ए प्रोसेस फार इलिसिटिंग द व्यूज आफ प्यूपिल्स सैण्डवेल : चाइल्ड साइकोलाजी सर्विस

जोन्स, आर. (2006) : ए हायर एजुकेशन इथॉस – ए रिवीव ऑफ इन्फार्मेशन एंड लिटरेचर टू द क्रिएशन आफ एन इथॉस आफ एच ई इन द कान्टेस्ट आफ एफ.ई. रिट्रिव्ड आन 3 अप्रैल 2009 फ्राम http//www.pace.stir.uk/weatheraldp52.thm

काटजे, एम. (1998) : रीजन्स फार एन इथॉस आफ डाइवर्सिटी–ए सरगन टू द कनवर्टेड, जनरल फार एजुकेशनल रिफार्म इन नामीबिया, वाल्यूम 7, पृ. 43–58

लिकोना, टी. (1991) : क्लाइमेट, रिट्रीव्ड फार 25 मार्च, 2009 फ्राम http//www.NC publicschool.org

मिलन, डी. (2006) : आई.एम. सेफ रिट्रीव्ड आन 11 फरवरी, 2009 फ्राम http//www.iamsafe.ca/homeen.php

एन.सी.ई.आर.टी (2008) : राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.

नूगेण्ट, एम. एंड मूनी, सी. (2008) : द एजुकेट टूगेदर इथॉस एंड पैरेण्टल पार्टिसिपेशन, इंटरनेशनल जर्नल आफ लीडरशिप इन एजुकेशन, 2,2,81–102

रटर (1974) : एज साइटेड इन कैरोलिन (1979) ए पर्सपेक्टिव ऑन द रिलेशनशिप बिटवीन स्कूल इथॉस एंड स्टूडेंट्स एकेडमिक एचीवमेंट अनपब्लिस्ड डिजर्टेशन, यूनिवर्सिटी आफ ब्रिटिश कोलम्बिया रिट्रीव्ड आन 12 दिसम्बर 2008 फ्राम http//wwwir.lib.sfu.ca/dspace/bitsream/1892/6892/i/b15060573.pdf

टोरिंग्टन एंड वेटमैन, (1989) : एज साइट 3 इन कैटलिन डोनेली (1989) डिफरेन्स इन स्कूल्स : ए क्वेश्चन आफ इथॉस रिट्रीव्ड आन 25 जनवरी 2009 फ्राम http//wwwleeds.ac.uk/edicol/documents/00001274.htm.

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन

**सुभाष सिंह***

***प्रस्तावना***

*शिक्षा मानव की मूलभूत आवश्यकता है। व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास शिक्षा पर निर्भर करता है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास होता है, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि होती है तथा व्यवहार में परिवर्तन होता है और वह सभ्य एवं सुसंस्कृत सामाजिक प्राणी बनता है। प्राथमिक शिक्षा ही शिक्षा की नींव है। जिस पर शिक्षा का भव्य महल निर्मित होता है। अतः प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा का आधार है, जिसके समुचित विकास एवं विस्तार के बिना शिक्षा व्यवस्था में सुधार सम्भव नहीं है। प्राथमिक शिक्षा के इसी दूरगामी महत्व को देखते हुए इसे मौलिक अधिकार एवं कर्तव्यों में शामिल किया गया है। यदि प्राथमिक शिक्षा शिक्षा की नींव है तो शिक्षक उस व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु। कहा जाता है कि कोई भी राष्ट्र अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता है। किसी भी शिक्षा प्राणी की कुशलता शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर करती है। अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली का असफल होना अवश्यम्भावी है। शिक्षक ही शिक्षा का पुनर्निर्माण की महत्वपूर्ण कुंजी है। शिक्षक ही राष्ट्र के भाग्य विधाता, राष्ट्र निर्माता, समाज का मार्गदर्शक एवं मानव की सभ्यता, संस्कृति तथा जीवनोपयोगी स्थिति को ज्ञात करने वाला माना जाता है। शिक्षक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज के उत्तरदायित्यों को पूरा करने का भरसक प्रयास करता है। शिक्षक के उत्तरदायित्वों की सफलता शिक्षा प्रक्रिया*

* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, आर.आर.पी.जी. कालेज, अमेठी, सुलतानपुर।
ईमेल: ss18799@gmail.com, drssrrpg1961@yahoo.com

*की सफलता एवं असफलता पर निर्भर करती है। छात्र का यदि सर्वांगीण विकास हो गया तो शिक्षा देने वाले शिक्षक सफल माने जाएँगे अन्यथा असफल। अत: इस शोध पत्र में शिक्षक के शिक्षकत्व को प्रभावित करने वाले एक प्रमुख कारण अध्यापन अभिक्षमता का अध्ययन किया गया है।*

## अध्ययन की आवश्यकता

प्राथमिक शिक्षा शिक्षा की आधारशिला है। इसके बावजूद भारत में प्राथमिक शिक्षा का विकास नहीं हो पाया है। इसी कारण इसे मौलिक अधिकार एवं मौलिक कर्त्तव्यों में शामिल किया गया। तत्पश्चात् सरकार इसके विकास के लिए अनेकानेक प्रयास कर रही है, किन्तु लाख प्रयास के बावजूद प्राथमिक शिक्षा के स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। प्राथमिक शिक्षा के इसी दूरगामी महत्व के बावजूद दिन-प्रतिदिन गिरते स्तर को देखते हुए अनुसंधानकर्त्ता ने प्राथमिक शिक्षा को अपने शोध के क्षेत्र के रूप में चुना।

यदि प्राथमिक शिक्षा शिक्षा की नींव है तो शिक्षक उस व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु। शिक्षा प्रणाली की कुशलता शिक्षकों की योग्यता पर निर्भर करती है, अच्छे शिक्षकों के अभाव में सर्वोत्तम शिक्षा प्रणाली का असफल होना अवश्यम्भावी है। शिक्षकों के उत्तरदायित्वों की सफलता शिक्षा प्रक्रिया की सफलता एवं असफलता पर निर्भर करती है। इस कसौटी पर प्राथमिक शिक्षक खरे नहीं उतर रहे हैं। आखिर वे कौन से कारक हैं जिसके कारण प्राथमिक शिक्षक अपने दायित्वों का निर्वहन नहीं कर पा रहे हैं। इसी जिज्ञासा से शोधकर्ता ने प्राथमिक अध्यापकों को अपने शोध का विषय बनाया। वर्तमान में प्राथमिक अध्यापकों के चयन की दो प्रक्रियाएँ हैं — (1) बी.टी.सी. और (2) विशिष्ट बी.टी.सी.। इसी कारण अनुसंधानकार्त्ता ने बी.टी.सी. एवं बिशिष्ट बी.टी.सी. के शिक्षकों के तुलनात्मक अध्ययन का निर्णय लिया।

सरकार के लाख प्रयास के बावजूद प्राथमिक शिक्षा का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। कहीं प्राथमिक शिक्षा के स्तर के गिरने का कारण प्राथमिक शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता में कमी तो नहीं है? इसी जिज्ञासा से शोधकर्त्ता ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया और अन्तत: अमेठी विधान सभा क्षेत्र में जो बी.टी.सी. एवं बिशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षक कार्यरत हैं, उनके अध्यापन अभिक्षमता के तुलनात्मक अध्ययन का निर्णय लिया।

### समस्या

''अमेठी विधानसभा क्षेत्र के बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन।''

### अध्ययन का प्रयोजन

प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित प्रयोजन के लिए किया गया है :

(1) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की सम्पूर्ण अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(2) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के मानसिक योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(3) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों का बच्चों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(4) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के ग्रहणशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(5) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के व्यावसायिक सूचना का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(6) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के व्यवसाय के प्रति रुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(7) बी.टी.सी. कला एवं विशिष्ट बी.टी.सी. कला वर्ग के शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(8) बी.टी.सी. विज्ञान वर्ग एवं विशिष्ट बी.टी.सी. विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(9) बी.टी.सी. महिला एवं विशिष्ट बी.टी.सी. महिला शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(10) बी.टी.सी. पुरुष एवं विशिष्ट बी.टी.सी. पुरुष शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

उपर्युक्त प्रयोजनों के आधार पर निम्नलिखित शून्य की परिकल्पनाएँ निर्धारित की गयी हैं :

(1) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की सम्पूर्ण अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(2) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के मानसिक योग्यता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(3) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के बच्चों के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(4) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के ग्रहणशीलता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(5) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के व्यावसायिक सूचना में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(6) बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों का व्यवसाय के प्रति रुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(7) बी.टी.सी. कला वर्ग एवं विशिष्ट बी.टी.सी. कला वर्ग के शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(8) बी.टी.सी. विज्ञान वर्ग एवं विशिष्ट बी.टी.सी. विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(9) बी.टी.सी. महिला एवं विशिष्ट बी.टी.सी. महिला शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

(10) बी.टी.सी. पुरुष एवं विशिष्ट बी.टी.सी. पुरुष शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

### अध्ययन की सीमा

प्रस्तुत अध्ययन निम्न सीमाओं के अनुसार किया गया है :

1. इस शोध में बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

2. प्रस्तुत अध्ययन जनपद के अमेठी विधान सभा क्षेत्र के बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी. टी.सी. शिक्षकों तक सीमित है।
3. इसमें जनपद के अमेठी विधान सभा के सम्पूर्ण बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों में से केवल 100 बी.टी.सी. एवं 100 विशिष्ट बी.टी.सी. अध्यापक शामिल हैं।
4. वर्तमान अध्ययन में अभिक्षमता के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक कारकों को सम्मिलित नहीं किया गया है।
5. परिणाम का सामान्यीकरण न्यादर्श के आकार एवं विशेषता पर निर्भर है।

## सम्बन्धित साहित्य

संबंधित साहित्य के अन्तर्गत गुप्ता के 'हायर सेकेण्डरी अध्यापकों के संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक समस्याओं का अध्ययन', द्विवेदी के शिक्षकों के व्यक्तित्व तथा विद्यार्थियों का उनके सम्बन्ध में अध्ययन, नागर के शिक्षक व्यक्तित्व तथा विद्यार्थियों और उनके सम्बन्ध में अध्ययन, राम के 'शिक्षक व्यवहार के अध्ययन', कौल के शिक्षकों के व्यवहार के अध्ययन। लेविगिया के 'ए स्टडी ऑफ जॉब सेटीस्फैक्शन एमंग स्कूल टीचर', सान्था के 'ए स्टडी ऑफ टीचर इन्फलूएन्स', छाबरा के 'माध्यमिक स्कूल के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन', सिंह के 'शिक्षक व्यवहार का अध्ययन', अंजनी के 'माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का अध्ययन', अरोड़ा के 'शिक्षण अभिरुचि और उसके शिक्षण व्यवसाय के साथ सम्बन्धों का अध्ययन', माथुर के 'शिक्षकों के व्यावसायिक सन्तुष्टि का अध्ययन', रंजना के 'प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की व्यावसायिक सन्तुष्टि का अध्ययन', बाजपेयी के 'माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं की व्यावसायिक संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन' आदि शोधों का अध्ययन किया गया।

## शोध विधि

प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

## अध्ययन की जनसंख्या

प्रस्तुत शोध कार्य में अमेठी विधानसभा के समस्त बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की जनसंख्या।

**तालिका – 1**

| शिक्षक | लिंग के आधार पर | | | विषय के आधार पर | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | **पुरुष** | **महिला** | **योग** | **कला** | **विज्ञान** | **योग** |
| | 66 | 34 | 100 | 84 | 16 | 100 |
| | 73 | 27 | 100 | 66 | 34 | 100 |

## न्यादर्श

न्यादर्श के रूप में अमेठी विधानसभा के 100 बी.टी.सी. एवं 100 विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों को चुना गया है। न्यादर्श के चयन के लिए सोद्देश्य न्यादर्श विधि का प्रयोग किया गया है।

## उपकरण

आंकड़ों के संकलन हेतु डॉ. आर.पी. सिंह एवं डॉ. एस.एन. शर्मा द्वारा निर्मित, 'टीचिंग एप्टीच्यूट टेस्ट बैट्री फॉर एलीमेन्ट्री स्कूल टीचर्स' का प्रयोग किया गया है। इस परीक्षण में 5 घटकों– (1) मानसिक योग्यता (2) बच्चों के प्रति अभिवृत्ति (3) ग्रहणशीलता (4) व्यावसायिक सूचना तथा (5) व्यवसाय के प्रति रुचि को शामिल किया गया है।

**तालिका–2**

**बी.टी.सी. शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता**

| | मानसिक योग्यता | बच्चों के प्रति अभिवृत्ति | ग्रहणशीलता | व्यावसायिक सूचना | व्यवसाय के प्रति रुचि | योग – सम्पूर्ण अध्यापन अभिरुचि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| योग | 2608 | 1450 | 1780 | 2420 | 888 | 9146 |
| मध्यमान | 26.08 | 14.50 | 17.80 | 24.20 | 8.88 | 91.46 |
| मानक विचलन | 2.28 | 2.09 | 2.84 | 1.75 | 1.04 | 4.70 |

**तालिका–3**

**विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता**

| | मानसिक योग्यता | बच्चों के प्रति अभिवृत्ति | ग्रहणशीलता | व्यावसायिक सूचना | व्यवसाय के प्रति रुचि | योग – सम्पूर्ण अध्यापन अभिक्षमता |
|---|---|---|---|---|---|---|
| योग | 2661 | 1544 | 1930 | 2455 | 883 | 9473 |
| मध्यमान | 26.61 | 15.44 | 19.30 | 24.55 | 8.83 | 94.73 |
| मानक विचलन | 1.96 | 1.81 | 2.72 | 1.57 | 1.25 | 5.29 |

## उपकरण का प्रशासन एवं फलांकन

इस परीक्षण को 100 बी.टी.सी. तथा 100 विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों पर प्रशासित कर आंकड़े एकत्र किये गये। परीक्षण का फलांकन, फलांकन सूची के माध्यम से किया गया है।

## सांख्किीय विधियां

प्रस्तुत शोध–पत्र में मध्यमान, मानक विचलन तथा टी–अनुपात सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है।

## आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करके परिणाम प्राप्त किया गया है। तत्पश्चात् समस्याओं का विश्लेषण परिकल्पना के अनुसार किया गया।

1. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के सम्पूर्ण अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है।
2. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के मानसिक योग्यता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.05 तथा 0.01 दोनों स्तरों पर स्वीकृत की जाती है।
3. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के बच्चों के प्रति अभिवृत्ति में कोई

सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है। अर्थात् बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की बच्चों के प्रति अभिरुचि में सार्थक अन्तर है।

4. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के ग्रहणशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है।
5. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के व्यावसायिक सूचना में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 तथा 0.05 दोनों स्तरों पर स्वीकृत की जाती है।
6. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के व्यवसाय के प्रति रुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना दोनों स्तरों पर स्वीकृत की जाती है।
7. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. कला वर्ग के शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है।
8. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. विज्ञान वर्ग के शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है।
9. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. महिला शिक्षिकाओं की अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है।
10. बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. पुरुष शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। यह परिकल्पना 0.01 स्तर पर निरस्त की जाती है।

## शैक्षिक निहितार्थ

अध्यापन अभिक्षमता शिक्षक के शिक्षकत्व के लिए महत्वपूर्ण घटक है। इसके अभाव में शिक्षक अपना शिक्षण कार्य सफलता पूर्वक संचालित नहीं कर सकते। प्रस्तुत शोध से स्पष्ट है कि बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता में सार्थक अंतर है। इसमें विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता बी.टी.सी.

शिक्षकों से अधिक है। परन्तु इसके बावजूद बी.टी.सी. शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता के औसत से स्पष्ट है कि उनकी अध्यापन अभिक्षमता भी समुचित है। अतः प्राथमिक शिक्षकों की अध्यापन अभिक्षमता समुचित रहने के बावजूद दिन-प्रतिदिन प्राथमिक शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। अतः इसका एक मात्र कारण अभिक्षमता नहीं है, बल्कि अन्य कारण भी हैं जो निम्नलिखित हैं :

(1) अध्यापकों का समय से विद्यालय न आना। विद्यालय के प्रति रुचि एवं कर्तव्यनिष्ठा का अभाव।

(2) सरकारी क्षेत्र के विद्यालय का निजी क्षेत्र के विद्यालयों से प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम न होना। साथ ही लोगों में निजी विद्यालयों के प्रति बढ़ता आकर्षण।

(3) आधारभूत संरचना की कमी।

(4) अध्यापकों के ऊपर शिक्षण के अतिरिक्त अन्य कार्यभार।

(5) प्रधानाध्यापक के पास शिक्षण कार्य के देखरेख के लिए समय का अभाव।

(6) प्राथमिक विद्यालय के छात्रों का निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर।

(7) शिक्षकों का सिर्फ जीविकोपार्जन के लिए शिक्षण व्यवसाय में आना।

(8) प्राथमिक क्षेत्र में अनुसंधान की कमी।

जब तक उपरोक्त कारण विद्यमान रहेगा, तब तक प्राथमिक शिक्षा के स्तर को लाख प्रयास के बावजूद भी सुधारा नहीं जा सकता। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक नागरिक, प्रशासक, प्रबन्धन वर्ग तथा शिक्षक और शिक्षाशास्त्री इसके लिए प्रयत्नशील होकर गर्त में जाते हुए प्राथमिक शिक्षा के बेड़े को पार लगाने का भगीरथ प्रयास करें।

## *संदर्भ*

प्रकाश गुरूमौज, (1983): अध्यापक के वांछित गुणों का धारण (छात्रों, अध्यापकों एवं प्रशिक्षकों की दृष्टि से) सम्पादित, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् उ.प्र., इलाहाबाद।

सिंह, अरुण कुमार, (20001): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षाशास्त्र में शोध विधियां, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली

सिंह, त्रिभुवन (1984): शिक्षण एवं शिक्षण कौशल, भारत-भारती प्रकाशन, जौनपुर।

यादव, विनय कुमार, (2008) : आज़मगढ़ जनपद के सगड़ी तहसील के बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों के अध्यापन अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन, अप्रकाशित एम.एड्. लघुशोध प्रबंध, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।

अरोरा, के. एंड चोपरा, आर. (1969) : ए स्टडी आफ स्टेट्स आफ टीचर्स एडुकेटर्स वर्किंग इन एलिमेंट्री टीचर्स ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

उपासनी, एन.के. (1966) : एन इवाल्यूशन आफ द एक्सस्टिंग टीचर्स ट्रेनिंग प्रोग्राम आफ प्राइमरी टीचर्स इन द स्टेट आफ महाराष्ट्र विद स्पेशल रिफरेंस टू रूरल एरिया, पी–एच.डी. थिसीस (एजुकेशन), पूना यूनिवर्सिटी।

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर माता-पिता के प्रोत्साहन का प्रभाव

**गुर प्यारी सतसंगी***

***प्रस्तावना***

*मानवीय संबंधों की आधारशिला पारिवारिक संबंध में बालक अपने विकास के लिए परिवार के सदस्यों पर निर्भर रहता है। आज समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव पारिवारिक संबंधों में पड़ रहा है तथा यह परिवर्तन एक समाज से दूसरे समाज में भिन्नता लिए हुए होता है। इन परिवर्तनों के कारण बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था में भारत जैसे परंपरागत देशों में बालकों को अनेक प्रकार के अनुभवों से गुजरना पड़ता है। परिवर्तन की इस धारा में एक बात प्रत्यक्ष रूप से उभर कर आयी है कि माता-पिता अपने बच्चों को समझने में असमर्थ रहे हैं। ऐसा विशेष रूप से उन परिवारों के विषय में सत्य है जो पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हैं।*

वर्तमान में इस धारणा के समर्थकों की संख्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है कि बालक का विकास मनोवैज्ञानिक विधि से होना चाहिए। इस मान्यता को स्वीकार करने वाले अधिकांशतः लोगों के मस्तिष्क में मनोविज्ञान का अर्थ भी जटिलताओं से गुथा हुआ है। उनके अनुसार बालक एक स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर जन्म लेता है, इसलिए उसके व्यक्तित्व पर माता-पिता को अपना व्यक्तित्व नहीं थोपना चाहिए और न ही उसे बन्धनों में जकड़ना चाहिए क्योंकि अत्यधिक प्रेम और उन्मुक्त स्वतंत्रता इन दो आधारों पर ही उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित होता है। कुछ परिवार विश्लेषकों के अनुसार जहाँ बालकों को आवश्यकता से अधिक स्वतंत्रता होती है, वहाँ बालक प्रतिभा संपन्न और योग्य बनने की अपेक्षा उद्दण्ड

* सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, डी.ई.आई., दयालबाग विश्वविद्यालय, दयालबाग, आगरा

ही बन जाता है। अत: बालक को सही दिशा में निर्देशन की आवश्यकता होती है।

यदि सम्पूर्ण भारतीय समाज के बारे में ही संक्षेप में कहना चाहें तो सामान्यत: यह कह सकते हैं कि न तो परिवारों ने, न ही हमारी पाठशालाओं व महाविद्यालय के शिक्षकों ने अथवा सरकार ने विद्यार्थियों में उपयुक्त प्रकार की उपलब्धि प्रेरणा को बढ़ाने में विशेष योग दिया है। अधिकांश माता-पिता तो अपनी संतानों को फीस, पुस्तक, कपड़े व दैनिक व्यय देना ही मात्र अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

किशोरावस्था एवं सामाजिक परिवर्तन के कारण माता-पिता व छात्र-छात्राओं के संबंधों के कारण 'प्रोत्साहन' भी शोध का विषय उचित दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक युग में जब माता-पिता दोनों ही व्यस्त हों, तब वह बालकों को कितना शैक्षिक प्रोत्साहन प्रदान कर पाते हैं। इस प्रोत्साहन से किशोर कितना प्रभावित होते हैं। प्रस्तुत अध्ययन इस विषय पर ही किया गया है।

**अध्ययन के उद्देश्य**

अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किये गये हैं :

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा-स्तर का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा-स्तर पर प्रोत्साहन स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।
4. लिंग भेदानुसार विद्यार्थियों के आकांक्षा-स्तर पर प्रोत्साहन स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

**अध्ययन की परिकल्पना**

अध्ययन की निम्नलिखित परिकल्पना निश्चित की गयी है :

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
4. लिंग भेदानुसार विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर प्रोत्साहन स्तर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

**अध्ययन विधि**

प्रस्तुत शोध कार्य में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया

**(अ) न्यादर्श**

प्रस्तुत शोध कार्य में आगरा शहर के यू.पी. बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त दो उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के 100 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया है।

**(ब) उपकरण**

प्रस्तुत शोध कार्य में निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया है:

1. डा. कुसुम अग्रवाल द्वारा निर्मित (1983) पैरेंटल एन्करेजमेंट स्केल।
2. डा. महेश भार्गव एवं प्रो. एम.ए. शाह द्वारा निर्मित (1971) आकांक्षा स्तर मापनी।

**(स) अध्ययन के चर**

अध्ययन में प्रयुक्त चर निम्नलिखित हैं :

स्वतंत्र चर - माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का स्तर,

आश्रित चर - विद्यार्थियों का आकांक्षा स्तर।

**निष्कर्ष**

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का अध्ययन

माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का अध्यन करने के लिए डा. कुसुम अग्रवाल द्वारा निर्मित 'पैरेंटल एन्करेजमेंट स्केल' (1983) का प्रयोग किया गया तथा मापनी पर प्राप्त प्राप्तांकों को उच्च औसत तथा निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। इसके पश्चात् मापनी के प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन की गणना की गयी हो प्रोत्साहन मापनी पर प्राप्तांकों का विवरण इस प्रकार है–

**तालिका-1**

**विद्यार्थियों के माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का अध्ययन**

| प्रोत्साहन स्तर | छात्र | प्रतिशत | छात्रा | प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| उच्च प्रोत्साहन | 16 | 32 | 10 | 20 |
| औसत प्रोत्साहन | 27 | 54 | 23 | 46 |
| निम्न प्रोत्साहन | 7 | 14 | 17 | 34 |
| कुल योग | 50 | 100 | 50 | 100 |

तालिका–1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं को माता–पिता द्वारा औसत स्तर पर अधिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

अध्ययन के प्रथम उद्देश्यानुसार विद्यार्थियों के माता–पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन का अध्ययन करने पर यह पाया गया कि विद्यार्थियों के प्रोत्साहन संबंधी प्राप्तांक सामान्य रूप से वितरित है। चूँकि 34 प्रतिशत विद्यार्थियों को निम्न स्तर तथा 20 प्रतिशत को उच्च स्तर और 46 प्रतिशत विद्यार्थी औसत स्तर पर थे। अतः समष्टि में माता–पिता द्वारा औसत संलग्नता प्राप्त विद्यार्थी सबसे अधिक हैं तथा छात्र–छात्राओं को मिलने वाले प्रोत्साहन में सार्थक अन्तर पाया गया अर्थात् छात्राओं की अपेक्षा छात्रों को अधिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है। इसके संबंध में यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में छात्राओं की अपेक्षा छात्रों की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता है।

**तालिका–2**

**विद्यार्थियों के माता–पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन के प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात**

| समूह | कुल संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रांतिक मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| छात्र | 50 | 344.1 | 19.7 | 2.84 | >.01 |
| छात्राएँ | 50 | 328.6 | 33.15 | | |

तालिका–2 में प्रदर्शित परिणामों से छात्र एवं छात्राओं के मध्यमान मूल्य एवं मानक विचलन में अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है तथा सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त क्रान्तिक मान t–तालिका में 68 स्वतत्रांश के लिए .01 सार्थकता स्तर पर दिये गये मान से अधिक है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि छात्राओं की अपेक्षा छात्रों को अधिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि भारतीय समाज में आज भी बालिकाओं की अपेक्षा बालकों की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता है।

**उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा–स्तर का अध्ययन**

विद्यार्थियों के आकांक्षा–स्तर का अध्ययन करने के लिए प्रो. एम.ए. शाह एवं डा. महेश भार्गव द्वारा निर्मित आकांक्षा स्तर मापनी का प्रयोग किया गया तथा मापनी पर प्राप्त प्राप्तांकों को वर्गीकृत कर आवृत्तियों का निर्धारण किया गया। इसके पश्चात् मापनी के

प्राप्तांकों के मध्यमान व मानक विचलन की गणना की गयी, आकांक्षा स्तर मापनी पर प्राप्तांकों का विवरण इस प्रकार है–

**तालिका-3**

**विद्यार्थियों के आकांक्षा-स्तर संबंधी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व क्रांतिक अनुपात**

| समूह | कुल संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रांतिक मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| छात्र | 50 | 2.87 | 4.56 | 0.71 | <.05 |
| छात्राएँ | 50 | 3.56 | 5.24 | | |

तालिका-3 में प्रदर्शित परिणामों से छात्र एवं छात्राओं के आकांक्षा-स्तर के मध्यमान, मानक विचलन में अन्तर दृष्टिगोचर हो रहा है, किन्तु सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त क्रान्तिक मान t – तालिका में 98 स्वतत्रांश के लिए .05 विश्वास स्तर पर दिये गये मान से कम है। अतः छात्र एवं छात्राओं के आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अतः दोनों के समूह के मध्यमानों में जो अन्तर दृष्टिगोचर हो रहा है, वह वास्तविक कारणों से न होकर सांयोगिक कारणों से है।

**उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा-स्तर पर प्रोत्साहन के प्रभाव का अध्ययन**

**तालिका-4**

**उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर प्रोत्साहन स्तर के प्रभाव से संबंधित प्राप्तांकों के सांख्यिकी मान**

| प्रोत्साहन स्तर के समूह | कुल संख्या | मध्यमान | प्रामाणिक विचलन | क्रांतिक मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| उच्च प्रोत्साहन | 26 | 4.63 | 4.18 | 1.80 | <.05 |
| औसत प्रोत्साहन | 50 | 2.44 | 5.19 | | |
| उच्च प्रोत्साहन | 26 | 4.63 | 4.18 | 1.42 | <.05 |
| निम्न प्रोत्साहन | 24 | 2.99 | 4.14 | | |
| औसत प्रोत्साहन | 50 | 2.44 | 5.49 | 0.45 | <.05 |
| निम्न प्रोत्साहन | 24 | 2.99 | 4.14 | | |

अध्ययन के तृतीय उद्देश्यानुसार उच्च-औसत, उच्च-निम्न, औसत-निम्न प्रोत्साहन प्राप्त विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त मान के आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अत: विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर प्रोत्साहन के विभिन्न स्तरों का कोई भिन्न प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि आकांक्षा स्तर पर प्रोत्साहन के अतिरिक्त अन्य कारकों जैसे पारिवारिक व आर्थिक स्थिति, विद्यालय वातावरण, व्यक्तिगत कारक (क्षमताएँ, योग्यताएँ, उपलब्धि, अभिप्रेरणा) आदि कारकों का भी प्रभाव पड़ता है तथा इसका कारण यह हो सकता है कि अधिकांश विद्यार्थी अपने लिए निश्चित आकांक्षा स्तर का निर्धारण नहीं कर पाते, क्योंकि विद्यार्थी

**लिंगभेदानुसार विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर पर प्रोत्साहन के प्रभाव का अध्ययन**

**तालिका-5**

**उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आकांक्षा स्तर पर प्रोत्साहन स्तर के प्रभाव का अध्ययन तथा संबंधित प्राप्तांकों के सांख्यिकी मान**

| प्रोत्साहन स्तर के समूह छात्र | कुल संख्या | मध्यमान | प्रमाणिक विचलन | क्रांतिक मान | सार्थकता स्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| उच्च प्रोत्साहन | 16 | 3.90 | 2.80 | 0.40 | <.05 |
| औसत प्रोत्साहन | 27 | 1.54 | 5.20 | | <.01 |
| उच्च प्रोत्साहन | 16 | 3.90 | 2.80 | 1.22 | <.05 |
| निम्न प्रोत्साहन | 7 | 4.5 | 6.15 | | <.01 |
| औसत प्रोत्साहन | 27 | 1.54 | 5.20 | 0.33 | <.05 |
| निम्न प्रोत्साहन छात्राएं | 7 | 4.5 | 6.15 | | <.01 |
| उच्च प्रोत्साहन | 10 | 5.8 | 5.54 | 1.15 | <.05 |
| औसत प्रोत्साहन | 23 | 2.33 | 5.62 | | |
| उच्च प्रोत्साहन | 10 | 5.8 | 5.54 | 2.88 | <.01 |
| निम्न प्रोत्साहन | 17 | 3.50 | 2.10 | | |
| उच्च प्रोत्साहन | 23 | 2.33 | 2.62 | 0.89 | <.05 |
| निम्न प्रोत्साहन | 17 | 3.50 | 2.10 | | |

अपनी क्षमताओं से अनभिज्ञ रहते हैं। अत: वह किसी लक्ष्य का निर्धारण करने में अपने को असमर्थ पाते हैं अर्थात् ये विद्यार्थी अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपने स्तर का निर्धारण नहीं कर पाते।

उच्च तथा औसत, उच्च तथा निम्न तथा औसत-निम्न प्रोत्साहन प्राप्त विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर की सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त t-मान तालिका में सार्थकता स्तर पर दिये गये मान से कम है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि माता-पिता द्वारा उच्च व औसत स्तर पर प्रोत्साहन प्राप्त उच्च व निम्न स्तर पर प्रोत्साहन प्राप्त तथा औसत व निम्न स्तर प्रोत्साहन प्राप्त छात्रों के आकांक्षा स्तर पर कोई अन्तर नहीं पाया गया। अत: कहा जा सकता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र शैक्षिक क्रिया संबंधी कार्यों में अधिक स्वतंत्रता पसंद करते हैं।

उच्च तथा औसत प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं के आकांक्षा स्तर पर सांख्यिकी गणना प्राप्त t-मान तालिका पर दिये गये सार्थकता स्तर के मान से कम है। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उच्च प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं व औसत प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं के आकांक्षा स्तर में कोई अन्तर नहीं होता।

माता-पिता द्वारा उच्च व निम्न प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं के मध्यमानों में सार्थक अन्तर है तथा सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त t-मान तालिका में सार्थकता स्तर पर दिये गये मान से अधिक है, अत: निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जो माता-पिता छात्राओं को उच्च स्तर का प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, उन छात्राओं का आकांक्षा स्तर निम्न प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं के आकांक्षा स्तर से अधिक होता है। अत: जिन छात्राओं की शैक्षिक क्रियाओं में माता-पिता की संलग्नता अधिक होती है, उनका आकांक्षा स्तर प्रभावित होता हैं।

औसत व निम्न प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं के आकांक्षा स्तर पर सांख्यिकी गणना द्वारा t-मान तालिका पर दिये गये सार्थकता स्तर परमान से कम है। अत: निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि औसात व निम्न प्रोत्साहन प्राप्त छात्राओं के आकांक्षा स्तर में कोई अन्तर नहीं पाया गया। अत: कहा जा सकता है कि छात्राएँ अपने परिवार के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं तथा वह माता-पिता द्वारा प्रदान प्रोत्साहन, सुझाव को गंभीरता पूर्वक ग्रहण करती हैं।

## *संदर्भ ग्रंथ*

अग्रवाल कुसुम (1983) : द्वारा निर्मित पैरेंटल एन्करेजमेंट स्केल

अग्रवाल रेखा (1990) : '*स्टाइल आफ पैरेंट पार्टीसिपेशन इन द एकेडेमिक एक्टीविटी आफ चिल्ड्रन इन रिलेशन टू देअर एकेडेमिक अचीवमेंट क्लास रूम एडजसमेंट एंड लेवल आफ एजुकेशनल एसपीरेशन*' अप्रकाशित पी-एच.डी. शैक्षिक शोध, मेरठ, विश्वविद्यालय मेरठ

भार्गव महेश एवं शाह एम.एम. : आकांक्षा स्तर मापनी 1971

बुच एम.बी. (1983) : '*थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेश्न*', नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 327-328।

गैरेट एच. ई.(1981) : स्टेटिसटिक्स साइकोलॉजी एण्ड एजूकेशन बम्बई, वफील्प एण्ड सिमसन लिमिटेड।

लोकेश (1993) : मैथोडोलॉजी ऑफ एजूकेशन रिसर्च, दिल्ली विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड।

स्लायवा एंड मेलहूइन्स 2004) : विटवीन लेविल ऑफ एसपीरेशन परफोर्मेन्स पास्ट परफोर्मेन्स एंड फ्यूचर परफोरमेन्स।

शर्मा, रुचि (2003) : '*विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर माता-पिता की संलग्नता के प्रभाव का अध्ययन*', अप्रंकाशित लघु शोध प्रबंध, शिक्षा संकाय, दयालबाग, आगरा।

वशिष्ठ एवं अरोरा (1991) : 'किशोर छात्र-छात्राओं के गृह पर्यावरण व उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन', अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध, आगरा डी.ई.आई. शिक्षा संकाय, दयालबाग, आगरा।

www.dundee.ac.uk/psychology/parents in education.
www.parental encouragement.org/6k
www.flipkart.com/factors affecting-career-path aspiration
www.webrel.org/psychology/level of aspiration htm-22k

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

*शोध टिप्पणी/संवाद*

# जैन एवं बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षक की संकल्पना

**आर.पी. पाठक*** और **अमिता पाण्डेय भारद्वाज****

भारतीय समाज में शिक्षक का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षक अपने आदर्श व्यक्तित्व से अपने शिष्यों को प्रभावित करता है और उसके सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। शिक्षक शिक्षार्थी का प्रत्येक पथ पर पथ प्रदर्शक होता है। वह शिक्षार्थी को उसके जीवन के उद्देश्य एवं लक्ष्यों से परिचित कराता है एवं उन लक्ष्यों तक पहुंचने में उसकी सहायता करता है। विद्वानों ने कहा है– शिक्षक एक माली के समान होता है और शिक्षार्थी पौधों के समान होता है, माली की अनुपस्थिति में पौधों का विकास उचित दिशा में नहीं हो सकता, माली उनको सींचता है तथा उसका उचित लालन–पालन करके उसको पौधा बनने में सहायता करता है।

*असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मृतमगमय।*

मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अन्धकार से आलोक की ओर ले चलो, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो। कहीं सुदूर अतीत में मानव ने की थी यह प्रार्थना। आकुल अन्तर से उसने असत्य के प्रति, अज्ञानान्धकार के प्रति, मरणधर्मिता के प्रति अपनी अस्वीकृति व्यक्त की थी, उन्हें नकार दिया था और बदले में चाहा था, सत्य आलोक और अमरता। प्रार्थना तो स्पष्ट है परन्तु प्रश्न उठता है किससे की थी उसने यह प्रार्थना? अवश्य ही वह ऐसा होगा जिसे प्रार्थी अपने से श्रेष्ठ मान रहा था, अधिक क्षमता संपन्न, अधिक योग्य, अधिक शक्तिशाली स्वीकार कर रहा था। वह अवश्यमेव कोई ऐसा था जिसे सत्य और असत्य का, तमस और आलोक का, मृत्यु और अमरता का पार्थक्य ज्ञात था, जिसके पास इनका ठिकाना था। इन विशेषताओं से संपन्न वह सृष्टि का आदि गुरु था। अब हम चाहें तो उसे परब्रह्म कहें, ईश्वर, परमात्मा, परमेश्वर, वेद, अन्तःकरण, अन्तरात्मा कुछ भी कह लें,

* प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र–विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–16
** शोध–व्याख्याता, शिक्षाशास्त्र–विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–16

था वह गुरु ही, पथप्रदर्शक, दिशानिर्देशक उचित अनुचित का विभेदक और सर्वोपरि गु–अंधकार का, अज्ञान का रोधक।, निरोधक, विनाशक में गुरु ही तो सत्य से साक्षात कराने वाला, अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाला। ज्ञान के भास्कर को उद्‌भासित करने वाला, नश्वरता, क्षणभंगुरता, सामयिकता की बेड़ियों में जकड़े मरदेह से हटाकर चिरंतन आत्मा की अनुभूति करवाने वाला होता है। वह गुरु ही था, यह गुरु ही रहेगा।

गुरु क्यों चाहिये? गुरु चाहिए उसे (शिष्य) उसी से परिचित करवाने के लिये। मानव को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है। उस मानव के लिए अभ्युदय और निःश्रेयस जागतिक उन्नति और पारमार्थिक उपलब्धि का लक्ष्य सदा बना रहता है। वह आहार, निद्रा, भय, मैथुन के अतिरिक्त भी कुछ करता है, कर सकता है और करना चाहता है। ऐसे मानव की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो दिखता है उसके जीवन के तीन आधार स्तंभ हैं, तीन अवलंबन हैं– माता, पिता और गुरु। माता–पिता जन्म देते हैं, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, वसा, चर्म, मेदा, सप्त धातुओं से युक्त शरीर का निर्माण करते हैं और उस शरीर में अपने जाने–अनजाने में अनुवांशिकी गुणसूत्रों का सम्प्रेषण करते हैं। उसके चित्त में संस्कारों को संचालित करते हैं। लालन–पालन कर उसके अस्तित्व को सुनिश्चित करते हैं, उसे नाम देते हैं परिचय देते हैं, और मानव समाज में परिचित करवाते हैं, प्रवेश करवाते हैं और सबसे बड़ी बात उसे गुरु की शरण में पहुंचाते हैं। अब बारी आती है गुरु की। गुरु उसे उसकी पहचान देते हैं। भौतिक अथवा सांसारिक दृष्टि से वह शिष्य क्या है? क्या कर सकता है? उसकी क्या और कितनी क्षमता है? कैसी सामर्थ्य है? उसमें कौन–कौन सी योग्यताएं हैं? जो उसी के अनजाने में उसी में छुपी हैं.... इस सभी की पहचान गुरु ही तो करवाता है और फिर उसे एक परिवार की सीमा से निकालकर उसका अपना परिचय बनाने में उसे प्रतिष्ठित होने में उन क्षमताओं और योग्यताओं को काम में लाने में उसका सहायक बनता है। संक्षेप में, गुरु शिष्य को उसके लक्ष्य की पहचान कराता है और उस लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग भी बताता है। आधार–आचरण, चिंतन–मनन आदि से शिष्य को दिशा–निर्देश देता है, उसका मार्गदर्शन करता है और जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में संयम, धैर्य और साहस से कार्य करने का, परिस्थिति विशेष में संघर्ष करने का मार्ग बताता है। गुरु का यह दिशानिर्देश शास्त्रीय ज्ञान से, पाठ्य–पुस्तकीय ज्ञान से अधिक होता है, विलक्षण होता है, उपादेय और महत्वपूर्ण होता है। यह मात्र बौद्धिक विकास नहीं है, यह तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व का गठन होता है, सच्चे अर्थों में शिष्य का पुनर्जन्म होता है और यही प्राचीनकाल की द्विज बनने की प्रक्रिया थी।

गुरु का यह कार्य प्राचीनकाल में था वैसा ही वर्तमान काल में भी है। अतीत की ओर

झाँकें तो सामने आती है उस काल की गुरु शिष्य की एक स्वस्थ परंपरा। उस समय गुरु का कोई विकल्प नहीं था। गुरु शिष्य का ही नहीं, समाज का भी पूजनीय और समादृत व्यक्ति होता था। ऐसे गुरु अधिकतर ऋषि हुआ करते थे। ज्ञानपुंज जो केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं कराते थे अपितु शिष्य को कसौटी पर कसकर देखते थे और जो शिष्य कसौटी पर खरा उतरता था जैसे सत्यकाम जाबालि–उसे अपना सम्पूर्ण ज्ञान दे देते थे। ऐसे कुछ प्रसिद्ध गुरुओं में वशिष्ठ, विश्वामित्र, धौम्य, सान्दीपनि, परशुराम आदि के नाम स्मरणीय हैं।

उस समय गुरु शिष्य का अध्यापन करते थे परन्तु यह अध्यापन उनकी जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं था। कुलपति पर हजारों विद्यार्थियों के भरण–पोषण का भी दायित्व होता था परन्तु उन्हें शिष्यों के प्रतिदान की न अपेक्षा थी और न कुछ लेने की आकांक्षा। तपोपूत तथा साधना निरत उनका जीवन तो सर्वस्व त्यागी समतुल्य होता था। ऐसी अवस्था में वे समाज को देते थे, अपने लिए कुछ नहीं लेते थे। जो लेते भी थे वह अपने शिष्यों के लिए। ऐसे व्यक्ति किसी से ईर्ष्या द्वेष का पात्र कैसे बन सकते थे। उनका कोई क्यों निरादर करने की भी सोच सकता था! स्वाभाविक रूपेण वे सभी सम्मान और श्रद्धा के भाजन होते थे। तभी तो गुरु की महिमा का ज्ञान करता हुआ भारतीय संस्कृति का आधारभूत पुराण साहित्य थकता नहीं था। ब्रह्मवैवर्त पुराण का कहना है कि यह गुरु था, जिसने देव, मंत्र, पूजा का विधान तथा जप आदि की पहचान करवाई। देव के द्वारा तो गुरु दिखाया नहीं जाता, जबकि गुरु के द्वारा देव साक्षात्कार करवाया जाता है। अत: देव से भी गुरु महत्तर हैं। उसने गुरु को सर्वदेवमय तो माना ही है, साथ ही उसे परब्रह्म भी स्वीकारा है–

*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर:, गुरु: प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चदोनलो रवि:।*
*गुरुर्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत्, गुरुरेव परं ब्रह्म नास्ति पूज्यो गुरो: पर:।*

वस्तुत: गुरु सर्वप्रथम तत्वार्थ बोधक के रूप में ब्रह्मा सदृश व्यक्ति की जिज्ञासा को बढ़ाता है, तत्पश्चात् विष्णु रूप में अवस्थित होते हुए स्व प्रकाश से व्यक्ति की जिज्ञासा का समाधान करने के उद्देश्य से उसे अपने स्वरूप में अवस्थित होने का ज्ञान प्रदान करता है अर्थात् अपनी ज्ञानाग्नि की ज्वाला को सतत् प्रज्ज्वलन के अभ्यास से ईश्वर प्राणीधान का मार्ग प्रशस्त करता है। इसी क्रम में आत्म तत्व के विवेचन में बाधक बुद्धि की संशयात्मक वृत्ति को शिव रूप में विनष्ट कर सच्चिदानंद स्वरूप परब्रह्म को जानने का मार्ग प्रशस्त करता है अर्थात् लोक में विचारों के उत्प्रेरक के रूप में बुद्धि की संशयात्मक वृत्ति के शोधन द्वारा तिमिरावरण को विध्वस्त करता हुआ ऋतु के स्वरूप का बोध कराता है। इसी कारण गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतिरूप माना गया है जो अपने स्व से दूसरे के स्व को प्रकाशित कर आत्मानन्दित होता है।

शिक्षा देने वाले व्यक्ति को शिक्षक कहा जाता है, किन्तु प्राचीन ग्रंथों में इसे तीन स्तर प्राप्त होते हैं। सर्वोच्च आचार्य, दूसरे स्तर पर उपाध्याय और तीसरे स्तर पर गुरु था।

आचार्य उसे कहते हैं, जो शिष्य को उसके उपनयन के पश्चात् शिक्षादि अंगों के साथ तथा रहस्यों की व्याख्या के साथ समग्र वेद की विद्या प्रदान करता है। उपाध्याय वह कहलाता है जो आजीविका के लिए शिष्य को वेद के अंग की अथवा वेद के सभी अंगों की शिक्षा देता है। गुरु वह व्यक्ति कहलाता है जो अपने यजमान के यहाँ गर्भाधान आदि संस्कारों को विधिपूर्वक कराता है। और शिष्यों के भोजन का प्रबंध करता हुआ अध्यापन कराता है।

सच्चा गुरु हमारे मिथ्याबोध को नष्ट कर देता है और हमें शास्त्रों के सच्चे अर्थ का बोध करा देता है, सुगति अकर्तव्य को समझा देता है। उसके बिना और कोई भी हमें संसार सागर से पार नहीं कर सकता। यदि व्यक्ति अपना हित चाहता है तो उसे ऐसे गुरु का वरण करना चाहिए कि जो स्वयं पाप-रहित मार्ग पर चलता है और निष्काम भाव से दूसरों को भी उसी पथ पर चलाता है, स्वयं तर चुका है और दूसरों को तारने में समर्थ है। सच्चा गुरु वही है जो हमें हमारे अन्दर स्थित सच्चिदानन्द का साक्षात्कार करा दे। अन्य सब तो नामधारी गुरु ही हैं।

गुरु और शिष्य के प्रगाढ़ संबंधों को शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है। हाँ, अनुभव अवश्य किया जा सकता है, जिसकी छाप सामाजिक व्यवस्था के परिदृश्य में देखी जा सकती है। पुत्रीयति छात्रम् प्राचीनाचार्यों ने शिष्य के प्रति गुरु की प्रेमाभिव्यक्ति को व्यक्त किया है। कृष्णयजुर्वेदीय शाखा के अन्तर्गत कठोपनिषद के प्रारम्भ में शांति पाठ के माध्यम से ज्ञानालोक के अनुष्ठान में गुरु शिष्य परंपरा के संरक्षण, गुरु तथा शिष्य की अभिवृद्धि और स्नेह सूत्र में सदैव बंधे रहने की मंगल कामना की गयी है। मांगलिक आकांक्षा में छुपे भावों को व्यक्त करते हुए महर्षि ने परमात्म तत्व से प्रार्थना की है:

*ऊँ सह नाववतुं सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै,*
*तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्वषावहै।*

शिष्य के लिए गुरु के प्रति आस्था और गुरु का शिष्य के प्रति अनुराग भाव वैदिक महर्षियों द्वारा की गयी मंगल कामना का ही प्रतिरूप है, जो अद्यतन के गुरु शिष्य संबंधों को व्यक्त करता है। रामायणकालीन संस्कृति की रूपरेखा के आलोड़न में भी इसकी पुष्टि हो जाती है, जहाँ गुरु गरिमा का विशेष ध्यान रखा गया है। भरतानुशासन पर्व के अन्तर्गत माता-पिता के साथ-साथ गुरु तथा आचार्य को भी जन्म से ही मनुष्य के लिए अनिवार्य माना गया है। मानवीय गुणों की अभिवृद्धि में सहायक तत्व के रूप में गुरु की महिमा चित्रित किया गया है और उसे माता-पिता के सदृश अर्चनीय माना गया है क्योंकि गुरु अस्त्र-शस्त्र और

शास्त्रीय विषयों के ज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रशिक्षण भी प्रदान करता था। इस तरह न केवल गुरु अपने शिष्य को आत्मसंरक्षण से संबंधित विद्याओं का ज्ञान कराता था, अपितु आत्म तत्व के उन्नयन से संबंधित आध्यात्मिकता का बोध भी कराता था।

समाज के नव-निर्माण में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय जीवन में आध्यात्मिकता की प्रधानता ने मानव समुदाय को सदैव अपनी ओर आकृष्ट किया है। आकर्षण की इस विद्या के मूल में मात्र आध्यात्मिकता ने ही नहीं अपितु उसके द्वारा विकसित किसी विशाल राजनैतिक ढांचे एवं सामाजिक संगठन ने इसे काल के विध्वंसकारी प्रभावों और इतिहास की दुर्घटनाओं को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान की है। भारतीय शिक्षा दर्शन और धर्म मूल रूप से आध्यात्मिक नींव पर ही अविलम्बित हैं। जो व्यक्ति परमोच्च कल्याण का मार्ग जानना चाहता है, उसे गुरु की शरण लेनी ही चाहिए।

वेद, उपनिषद और स्मृति आदि ग्रंथों ने शिक्षा के रूप में विद्यमान सारगर्भित तथ्यों को शैक्षणिक विचारों की धारा में प्रवाहित किया है, जिससे आगे आने वाली पीढ़ी भी उन विचारों से युग-युगान्तर तक आप्लावित होती रहे। शंकराचार्य, कबीर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानन्द और डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि महान शैक्षिक विचारकों ने इसी प्राचीन और पवित्र परंपरा को सुनियोजित और सारगर्भित रूप में प्रस्तुत कर नवीन दृष्टिकोण को विवेचित करने का प्रयास किया है, जिससे सामुदायिक विकास के साथ-साथ राष्ट्र के नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

## जैन दर्शन में शिक्षक संकल्पना

हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जा सके, उसे शिक्षा कहते हैं। जो जीव शिक्षादि को मन के आलम्बन से ग्रहण करता है, वह संज्ञी कहलाता है। जैन आचार्यों ने वर्णज्ञान के विषय में पाणिनीय शिक्षा में प्रतिपादित वर्णमाला के अन्तर्गत 64 वर्णों को यथास्थिति स्वीकार कर एक-एक अक्षर श्रुतज्ञान उत्पन्न होने की बात कही है। इस अक्षर ज्ञान का प्रदाता गुरु होता है। इसलिए जैनाचार्यों ने गुरु के लिए बहुत ही महिमामयी शब्दों का प्रयोग किया है, यथा-

*गुरुर्विधाता गुरुदेव दाता गुरुः स्वबन्धुर्गुरत्नसिन्धुः।*
*गुरुर्विनेता गुयरेव तातो गुरुर्विमोक्षो घृतकर्मपक्षः॥*

गुरुजनों से समाज को मार्गदर्शन प्राप्त होता है। गुरुजन न केवल ज्ञानवर्द्धक होते हैं, अपितु उनका अनुभव भी बहुआयामी होता है। उनका व्यक्तित्व पूर्वाग्रहरहित एवं निष्पक्ष

होने के कारण उनके वचनों, उपदेशों और प्रवचनों पर समाज की अनन्य श्रद्धा होती है।

गुरु के लिए दो शब्द प्रमुखतः प्रयुक्त होते हैं — अध्यापक और शिक्षक। इनके प्रत्येक वर्ण का मार्मिक अभिप्राय जैन परंपरा में इस प्रकार महत्व मंडित किया गया है–

अ — अध्ययनशील
ध्या — ध्यानशील
प — पापभीरु
क — कर्म निष्ठ

इसी प्रकार शिक्षक पद की भी विवेचना की गयी है–

शि — शिष्ट
क्ष — क्षमाशील
क — कर्त्तव्यनिष्ठ

इन गुणों से सम्मानित शिक्षक ही देश की संतति को शिक्षित करके सुयोग्य नागरिक बनाते हैं, जिनका समूह राष्ट्र की संज्ञा से अलंकृत होता है। यदि नागरिक सुशिक्षित और सुसंस्कृत नहीं हैं, तो वह देश राष्ट्र की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकता। देशप्रेम और राष्ट्रीयता के संस्कार शिक्षक ही देता है। वही ऐसे सुयोग्य समाज की रचना करता है, जो सर्वांगीण, सुखी, समृद्ध तथा राष्ट्र को गति देने वाला होता है।

गुरु एवं अध्यापक विभिन्न पर्यायान्तरों द्वारा निर्दिश्यमान शिक्षक मानवता का परिचायक होने के साथ–साथ विभूतिमान परमेश्वर का भी परिचायक होता है। अतएव भारतीय संस्कृति में शिक्षक की महतीय भूमिका रही है।

## शिक्षक का अर्थ

लोक व्यवहार में सामान्यतः अध्यापकों को गुरु कहा जाता है। माता–पिता को भी गुरु कहते हैं। वास्तव में गुरु शब्द का अर्थ है महान। महान वही है जो अपने को कृतकृत्य करके दूसरों को कल्याणकारी मार्ग का दर्शन कराता है। जब तक व्यक्ति स्वयं वीतरागी नहीं होगा, तब तक वह दूसरों को सदुपदेश नहीं दे सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि गुरु जब मुख से उपदेश दे, तभी गुरु है। अपितु गुरु वह है जो मुख से उपदेश दिये बिना भी अपने जीवन दर्शन द्वारा दूसरों को सन्मार्ग में लगा दे।

## परमगुरु

अर्हन्त और सिद्ध भगवान जो अपने अनन्त ज्ञानादि गुणों से तीनों लोकों में महान हैं, वे ही त्रिलोकगुरु या परमगुरु कहे जाते हैं। इनमें गुरु के रूप में तीर्थंकरों का विशेष महत्व

है क्योंकि उनका उपदेश हमें प्राप्त होता है। वे देवाधिदेव हैं तथा परमगुरु भी हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय के द्वारा जो महान बन चुके हैं, उन्हें गुरु कहते हैं। ऐसे गुरु हैं–

आचार्य,

उपाध्याय,

साधु।

ये तीन परमेष्ठी पाँच महाव्रतों के धारी, मद का मंथन करने वाले तथा क्रोध, लोभ, भय का त्याग करने वाले गुरु कहे जाते हैं। आचार्य आदि तीनों परमेष्ठी गुरु श्रेणी में आते हैं। सिद्ध तथा अर्हंत अवस्था को प्राप्त करने से पूर्व सभी मुनि गुरु कहलाते हैं क्योंकि ये सभी मुनि नैगम नय की अपेक्षा से अर्हंत तथा सिद्ध अवस्था-विशेष को धारण कर सकते हैं। देवस्थानीय अर्हंत और सिद्ध को छोड़कर गुरु का यद्यपि सामान्य रूप से एक ही प्रकार है, परन्तु विशेष अपेक्षा से वह तीन प्रकार का है – आचार्य, उपाध्याय और साधु। जैसे अग्नितत्व सामान्य से अग्नि एक प्रकार की होकर भी तृणाग्नि, पत्राग्नि, काष्ठाग्नि आदि भेद वाली होती है।

विषय-भोगों में जिनकी आसक्ति है तथा जो परिग्रह को धारण करते हैं, वे संसार में उलझे रहने के कारण गुरु नहीं हो सकते, क्योंकि जो स्वयं का उद्धार नहीं कर सकते हैं वे अन्य का उद्धार कैसे कर सकते हैं। अतएव असंयत मिथ्यादृष्टि साधु वंदनीय नहीं हैं। जो मोहवश अथवा प्रमादवश जितने काल तक लौकिक क्रियाओं को करता है वह उतने काल तक आचार्य नहीं है तथा अतरंग में व्रतों से भी च्युत है। इस तरह मिथ्यादृष्टि और सदोष साधु गुरु कहलाने के योग्य नहीं है।

जो ज्ञानवान तथा चरित्रधारी हैं, उन गुरुओं के वचन संदेहरहित होने से ग्राह्य हैं। जो ज्ञानवान और उत्तम चरित्रधारी नहीं हैं, उनके वचन संदेहास्पद होने से स्वीकार के योग्य नहीं हैं। जो तप, शील, संयमादि को धारण करने वाले हैं, वे ही साक्षात् गुरु तथा नमस्कार के योग्य हैं, इनसे भिन्न नहीं। निश्चय से अपनी शुद्ध आत्मा ही गुरु है। गुरु का अर्थ है जो तारे, भवसागर से पार लगाये। अर्हन्तादि उसमें निमित्त हैं। इस तरह उपादान कारण की दृष्टि से अपनी शुद्ध आत्मा ही गुरु है। जैसा कि कहा गया है–

(क) अपनी आत्मा ही गुरु है क्योंकि वही सदा मोक्ष की अभिलाषा करती है, मोक्ष-सुख का ज्ञान करता है तथा उसकी प्राप्ति में अपने को लगाता है।

(ख) आत्मा ही जन्म, मरण तथा निर्वाण को प्राप्त करता है। अतः निश्चय आत्मा का गुरु आत्मा ही है, अन्य नहीं। अर्हंत, आचार्य आदि सम्यक्दर्शन में निमित्त होने से

व्यवहार से गुरु है। यहाँ ऐसे गुरुओं का ही विचार अपेक्षित है, अन्यथा आत्मस्वरूप को पहचानना कठिन है।

(ग) यह आत्मा अपने ही द्वारा संसार या मोक्ष को प्राप्त करता है। अतएव स्वयं ही अपना शत्रु या गुरु भी है।

(घ) आत्मा का शुद्ध भाव ही निर्जरादि में कारण है, वही परमपूज्य है और केवल वही आत्मा गुरु है।

विशेष अवस्था को छोड़कर आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों में मुनिपना समान होने से उनमें परमार्थतः कोई भेद नहीं है, क्योंकि मुनि बनने का कारण एक समान है, ब्रह्म एक सा है, तप, व्रत, चारित्र, समता, मूलगुण, उत्तरगुण, संयम, परीषहजय, उपसर्गजय, आहारदिविधि, चर्या, स्थान, आन आदि सभी कुछ एक सा है। इसी तरह से तीनों यद्यपि समान रूप से दिगम्बर मुनि हैं, परन्तु मुनिसंघ की व्यवस्था हेतु दीक्षाकाल आदि के अनुसार इनके कार्यों का विभाजन किया जाता है। जैसे – कोई मुनिसंघ का कुलपति (आचार्य) होता है, जिसे 'दीक्षागुरु' भी कहा जाता है। कोई शिक्षा गुरु (श्रुतगुरु) होता है जो शास्त्रों का अध यापन आदि कराता है, जिसे उपाध्याय कहते है। कोई निर्यापकाचार्य होता है जो समाधिमरण से इच्छुक साधु की साधना कराता है। छेदोस्थापना कराने वाले को भी निर्यापकाचार्य कहते हैं। जो आचार्य तो नहीं है परन्तु विशेष परिस्थितियों में आचार्य के कार्यों को करता है उसे एलाचार्य कहते हैं। इसी तरह कार्यानुसार साधुओं का भी पदगत भेद किया गया है।

**आचार्य**

साधु बनने की इच्छा लोगों का परीक्षण करके उन्हें दीक्षा देने वाला, उनको शिक्षा देने वाला, उनके दोषों का निवारण करने वाला तथा अन्य अनेक गुणों से विशिष्ट संघनायक साधु आचार्य कहलाता है। लोक में गृहस्थी के धर्म-कर्म संबंधित विधि-विधानों को कराने वाले गृहस्थाचार्य तथा पूजा प्रतिष्ठा आदि कराने वाले प्रतिष्ठाचार्य हैं, किन्तु वे गृहस्थ हैं, मुनि नहीं। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित साधु पाँच प्रकार के आचार (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य) का स्वयं निरतिचार पालन करता है, अन्य साधुओं से उस आचार का पालन करवाता है, दीक्षा देता है, व्रतभंग होने पर प्रायश्चित कराता है। इस प्रकार आचार्य साधु संघ का प्रमुख होता है और आत्म साधना के कार्यों में सदा सावधान रहता है, संघ संचालन कार्य वह कर्तव्य समझ कर करता है, उसमें विशेष रुचि नहीं रखता। जब कोई व्रती अपने आत्मिक कार्यों में प्रमादी होने लगता है तो वह उसे आदेशपूर्वक प्रमाद छोड़ने को कहता है, अव्रती को कोई आदेश नहीं करता। यद्यपि उपदेश सभी को देता है, फिर भी न तो हिंसाकारी आदेश करता है, और न उपदेश। वह गौण रूप से

दान-पूजा का उपदेश दे सकता है। आस्त्रव के कारण भूत सभी प्रकार के उपदेशों से वह अपने को बचाता है। असंयमी पुरुषों के साथ संभाषण आदि कभी नहीं करता, क्योंकि जो ऐसा करता है वह न तो आचार्य हो सकता है और न अर्हंतमत का अनुयायी।

आचार्य धीर, गंभीर, निष्कंप, निर्भीक, सौम्य, निर्लेप तथा शूरवीर होते हैं। पंचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद का दलन करने वाले, चौदह विद्यास्थानों में पारंगत, स्वसत्य, परसमय के ज्ञाता और आचारांग आदि ग्रंथों के विज्ञाता होते हैं। वे प्रवचन रूपी समुद्रजल में स्नान करने से निर्मल बुद्धि वाले होते हैं। ऐसे आचार्य ही साक्षात गुरु हैं तथा नमस्कार करने योग्य हैं। इनसे भिन्न स्वरूप वाले न तो आचार्य (संघपति) हैं और न गुरु।

## आचार्य के गुण

आचार्य के छत्तीस गुण कौन-कौन से हैं? इस विषय में यद्यपि पूर्ण एकरूपता नहीं है तथापि आचार्य मूलत: साधु है। अत: कुछ गुण ऐसे हैं जो सामान्य साधु में होना अनिवार्य हैं। जैसे आठ आचारवत्व आदि दस स्थितिकल्प, बारह तप और छ: आवश्यक – ये आचार्य के छत्तीस गुण हैं। अपराजितसूरि के अनुसार, आठ ज्ञानाचार, आठ दर्शनाचार, बारह तप, पांच समिति तथा तीन गुप्ति ये आचार्य के छत्तीस गुण हैं। अन्यंत्र अट्ठाईस मूलगुण तथा आचारवत्व आदि आठ गुणों को कहीं दस आलोचना, दस प्रायश्चित, दस स्थिति और छ: जीवगुणों को, कहीं बारह तप, छ: आवश्यक, पाँच आचार, दस धर्म और तीन गुप्तियाँ आचार्य के छत्तीस गुण बतलाये हैं।

**आचारवत्व आदि आठ गुण :** जैन परंपरा में आचार्य के आचारवत्व आदि आठ गुणों का वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार है–

(1) आचारवत्व
(2) आधारवत्व
(3) व्यवहारपटु
(4) प्रकुर्वित्व
(5) आयापायकथी
(6) उत्पीलक
(7) अपरिस्रावी
(8) सुखावह या संतोषकारी निर्यापक

**दस स्थिति कल्प :** आचार्य के दस स्थितिकल्प बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं –

आचेलक्य
अनुद्दिष्टभोजी

शय्यासनत्याग
राजपिण्डत्याग या आरोगभुक
कृतिकर्म (साधु की विनयादि क्रिया)
व्रतवान।
ज्येष्ठ सद्गुण
प्रतिक्रमी या प्रतिक्रमणी।
मासस्थिति

पद्य या दो निषद्यक (वर्षाकाल में चार मास पर्यंत एक स्थान पर निवास)

**बारह तप :** बारह तप सभी साधुओं के लिए यथाशक्ति अवश्यकरणीय हैं। इनके दो भेद किये गये हैं, बाह्य और आभ्यान्तर। ये निम्न हैं:

(1) अनशन
(2) अवमोदर्य (भूख से कम खाना)
(3) रसपरित्याग
(4) वृत्तिपरिसंख्यान
(5) कायक्लेश
(6) विविक्तशयनासन
(7) प्रायश्चित (अपराध परिमार्जन)
(8) विनय
(9) वैयावृत्त
(10) स्वाध्याय
(11) ध्यान
(12) व्युत्सर्ग

इसमें प्रथम छः ब्रह्म तप कहलाते हैं और अंतिम छः अभ्यन्तर तप हैं।

**छः आवश्यक :** सभी साधुओं को प्रतिदिन करणीय निम्न छः आवश्यक बताये गये हैं–

1. समायिक
2. चतुर्विंशतिस्तव
3. वन्दना
4. प्रतिक्रमण
5. प्रत्याख्यान
6. कायोत्सर्ग

## आचार्य दीक्षागुरु के रूप में

जब कोई व्यक्ति साधु बनकर संघ में आना चाहता है तो आचार्य प्रथमत: उसकी परीक्षा करके यह पता लगाता है कि वह साधु बनने की योग्यता रखता है या नहीं। इसके बाद अनुकूलता देखकर साधु बनने वाले के माता-पिता आदि की तथा अन्य व्यक्तियों की सम्मति लेकर आचार्य उसे दीक्षा देते हैं। दीक्षा देने के कारण उसे दीक्षागुरु कहते हैं। जैसा कि कहा गया है-

''लिंग धारण करते समय जो निर्विकल्प सामायिक संयम का प्रतिपादन करके शिष्य को प्रवज्या देते हैं वे आचार्य दीक्षागुरु कहलाते हैं। दीक्षागुरु ज्ञानी और सही अर्थों में वीतरागी होना चाहिए। यदि ऐसा दीक्षागुरु नहीं होता तो उससे अभीष्ट मोक्ष फल नहीं मिलेगा। शुद्धात्मा के उपदेश से शून्य अज्ञानी छद्‌मस्थों से जो दीक्षा लेते हैं वे पुण्यादि का फल तो प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु आत्यन्तिक दुखनिवृत्ति रूपी मोक्ष नहीं प्राप्त करते। अतएव सही दीक्षागुरु से ही दीक्षा लेनी चाहिए।

## बालाचार्य

असाध्य रोगादि को देखकर जब आचार्य अपनी आयु की अल्पता का अनुभव करता है तो अपने शिष्यों में से अपने समान गुण वाले किसी योग्यतम शिष्य को अपना उत्तराधिकारी बनाता है। ऐसे उत्तराधिकारी को बालाचार्य कहते हैं। आचार्य अपने गच्छ का अनुशासन करने हेतु शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र आदि में अपने समान गुण वाले बालाचार्य पर गुण को विसर्जित कर देते हैं। उस समय आचार्य अनुशासन संबंधी कुछ उपदेश बालाचार्य को देते हैं तथा स्वयं समाधिमरण आदि की तैयारी में लग जाते हैं। नियम भी है कि सल्लेखना के समय तथा श्रेणी आरोहण के समय आचार्य पद का त्याग कर दिया जाता है या स्वत: त्याग हो जाता है।

## एलाचार्य

'एला' शब्द का अर्थ है इलायची। जिस तरह इलायची आकार में छोटी होकर भी महत्वपूर्ण होती है, उसी तरह जो अभी आचार्य तो नहीं है परन्तु आचार्यवत्‌ गुणों के कारण आचार्य के कार्यों को करता है, उसे एलाचार्य कहते हैं। यह गुरु की अनुपस्थिति में अन्य मुनियों को चारित्र आदि के क्रम को बतलाता है।

## निर्यापकाचार्य

निर्यापकाचार्य का विशेष महत्व रहा है। इसमें आचार्य के गुणों के साथ एक विशेष विधि की दक्षता होती है। यह दो प्रकार की होती है— छेदोपस्थापना कराने वाले और सल्लेखना कराने वाले। ये दो भेद कार्य की अपेक्षा से है। 'प्रवचनसार' की 'तात्पर्यवृति' टीका में

निर्यापकाचार्य को शिक्षागुरु और श्रुतगुरु बतलाया है तथा निर्यापक का लक्षण किया है– संयम में छेद होने पर प्रायश्चित्त देकर संवेग और वैराग्यजनक परमागम के वचनों के द्वारा जो साधु का संवरण करते हैं उन्हें निर्यापक कहते हैं। अर्थात् संयम से च्युत साधु को दीक्षाछेदरूप में प्रायश्चित्त के द्वारा पुन: संयम में स्थापित करना तथा सुदृढ़ समाधिकरण के इच्छुक साधु इच्छा को सध्वाना निर्यापकाचार्य का प्रमुख कार्य है।

## गुरु के कर्तव्य

जैन ग्रंथों में गुरु के निम्नलिखित कर्तव्य बताये गये हैं:

आचार्य को चाहिए कि वे विनीत शिष्य को, अपनी कमजोरी छिपाये बिना सरल शब्दों में सही-सही ज्ञान करायें।

गुरु को चाहिए कि वे सारगर्भित प्रश्नों के उत्तर ही दें, असंबद्ध, असारगर्भित और निश्चयात्मक वाणी का प्रयोग न करें।

गुरु निपुण एवं विनीत शिष्य की ही अभिलाषा करें। यदि विनीत शिष्य न मिले तो व्यर्थ का शिष्य परिवार न बढ़ाकर एकाकी विचरण करें।

उपदेश देते समय शिष्य को पुत्र के समान मानकर उसके लाभ को दृष्टि में रखें।

ऐसे शिष्य को उपदेश न दें जो कि उपदेश का पालन न करें, अपितु विनीत शिष्य को ही उपदेश दें जैसे चित्त का जीव, संभूत के जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को उपदेश देकर सोचता है कि मैंने इसे व्यर्थ उपदेश दिया, क्योंकि इस पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

गुरु की गरिमा का गुणगान जैन आगमों में मुक्त कण्ठ से किया गया है। पंचतत्वों में उन्हें मध्य स्थान प्राप्त है तथा 'णमो आयरियाण' के रूप में उनकी उपासना की जाती है। वैदिक धर्म में तो उन्हें देव का स्वरूप माना गया है। आचार्य की आज्ञा तीर्थंकर के समान अनुलंघनीय होती है। वे तीर्थंकर की अनुपस्थिति में तीर्थंकर के समान तीर्थ के संचालक होते हैं। अत: वे तीर्थकर के सदृश होते हैं। जिस प्रकार प्रात:काल रात्रि के अन्त में दैदीप्यमान सूर्य समस्त भरतखण्ड को अपने किरण समूह से प्रकाशित करता है, ठीक उसी प्रकार आचार्य भी श्रुत शील और बुद्धि से युक्त उपदेश द्वारा जीवादि पदार्थों के स्वरूप को यथावत् प्रकाशित करते हैं तथा जिस प्रकार स्वर्ग में देव सभा में मध्य शोभते हैं, उसी प्रकार साधु सभा के मध्य आचार्य शोभते हैं। चन्द्रमा की उपमा देते हुए कहा गया है– जिस प्रकार कौमुदी के योग से युक्त तथा नक्षत्र और तारों के समूह से घिरा चन्द्रमा बादलों से रहित अतीव स्वच्छ आकाश में शोभित होता है, ठीक उसी प्रकार आचार्य भी साधु समूह में सम्यक्त्या शोभित होते हैं।

**उपाध्याय**

उपाध्याय वक्तृत्व कला में निपुण होता है तथा आगमज्ञ (बारह अंगों का ज्ञाता) होता है। इसका मुख्य कार्य अध्ययन और अध्यापन होता है। इसमें आचार्य के सभी गुण पाये जाते हैं। यह आचार्य की तरह धर्मोपदेश दे सकता है, परन्तु आदेश नहीं दे सकता। उपाध्याय के लिए शास्त्रों का विशेष अभ्यास होना आवश्यक है। वह स्वयं श्रुत का अध्ययन करता है और शिष्यों को श्रुत का अध्यापन कराता है। अत: लोकव्यवहार में सभी लोग इसे आसानी से गुरु समझते हैं। श्रेष्ठ उपाध्याय वही है जो ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों का पाठी हो। जैसा कि कहा है 'रत्नत्रय से सुशोभित, समुद्रतुल्य, अंग और पर्व ग्रन्थों में पारंगत तथा श्रुत के अध्यापन में सदा तत्पर महान साधु कहलाता है। सच्चा उपाध्याय वही है जो स्वयं सदाचार सम्पन्न हो, आगमग्रंथों का ज्ञाता हो तथा आगम ग्रंथों का अध यापन करता हो। आगम भिन्न विषयों का उपदेष्टा उपाध्याय नहीं है। काल दोष से आज यद्यपि ग्यारह अंग और चौदह पूर्व ग्रंथ न तो उपलब्ध हैं और न ही उनका कोई ज्ञाता है, फिर भी उन ग्रंथों के आधार पर लिखे गये कषायपाहुड, षट्खण्डागम, समयसार आदि के ज्ञाता एवं उपदेष्टा साधु उपाध्याय माने जा सकते हैं।

**साधु**

जब श्रावक दर्शन, व्रत आदि के क्रम में आत्म विकास की ग्यारहवीं प्रतिमाद (उद्दिष्टत्याग) में पहुंचकर मात्र एक लंगोटीधारी ऐलक हो जाता है, तब वह साधु बनने का पूर्ण अभ्यास करता है। ऐलक अवस्था तक वह श्रावक कहलाता है। इसके बाद ऐलक की योग्यता की परीक्षा लेकर जब आचार्य उसे विधिपूर्वक अनगार दीक्षा देता है तब वह साधु कहलाता है। साधु बनने के पूर्व धारण की गई एकमात्र लंगोटी को भी छोड़कर उसे नग्न दिगंबर हो जाना पड़ता है। यहां भी आत्मशुद्धि की प्रमुखता होती है अन्यथा नग्न होकर भी वह साधु कहलाने के योग्य नहीं है।

**बौद्ध दर्शन में शिक्षक की संकल्पना**

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अध्यापक गुरु या शिक्षक का शिक्षा में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध शिक्षा दर्शन के अनुसार, छात्र की सम्पूर्ण आध्यात्मिक, नैतिक, मानसिक, चारित्रिक एवं ज्ञान-कौशल विकास की जिम्मेदारी शिक्षक की होती है। शिक्षक छात्र के साथ पुत्रवत् व्यवहार करते हुए उसकी रक्षा तथा उसके सर्वांगीण विकास के प्रति उत्तरदायी है। अध्यापक या शिक्षक के विषय में बौद्ध दर्शन में जो विचार या उल्लेख मिलते हैं उनसे स्पष्ट होता है कि बौद्ध शिक्षक पूर्व ब्राह्मणीय शिक्षक के अनुरूप ही था। बौद्ध शिक्षण-पद्धति में शिक्षक अथवा गुरु को आचार्य और उपाध्याय की संज्ञा से विभूषित किया गया है। जो

विद्या, चरित्र तथा स्तर की दृष्टि से योग्य होते थे, वही आचार्य और उपाध्याय कहलाते थे। उन दोनों के कार्य को देखते हुए दोनों में अन्तर दिखलाना कठिन है। जैसा कि 'महावग्ग' में वर्णन है– ''उपाध्याय वरिष्ठ अधिकारी होते थे जो नये भिक्षुओं (शिक्षार्थियों) को शास्त्र एवं सिद्धांत की शिक्षा दिया करते थे, जबकि आचार्य की यह जवाबदेही होती थी कि वे उन (नये भिक्षुओं) के आचरण की देखरेख करें। इसीलिए उन्हें कर्माचार्य की संज्ञा से भी संबोधित किया जाता था।''

पालि बौद्ध ग्रंथों में आध्यात्मिक गुरु के लिए 'उपज्झाय' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो संस्कृत शब्द 'उपाध्याय' का रूपान्तरण है। 'उपज्झाय' शब्द का अर्थ बताते हुए डा. मदनमोहन सिंह ने कहा है– ''जो निकट चला गया हो।'' इसी तरह आचार्य के लिए 'आचरिय' शब्द का प्रयोग किया गया है। डा. सिंह के अनुसार शिक्षा द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले को आचरिय की संज्ञा दी गयी है।

बुद्धघोष की टीका के अनुसार 'उपाध्याय' वे भिक्षु हो सकते हैं जो इस वर्ष या इससे अधिक काल से भिक्षु रहे हों और 'आचार्य' वे हो सकते हैं जो छः वर्ष से अधिक भिक्षु रहे हों। किन्तु मात्र उम्र की वरीयता पर्याप्त नहीं होती थी। यदि वे विद्वान और निपुण न हों।

बौद्ध शिक्षक परिव्राजक के रूप में विचरण भी करते थे और लोगों को धर्म की शिक्षा देते थे। 'मज्झिम निकाय' में लिखा है–

शिक्षक धर्मरत होते थे। 'उपसम्पदा' संस्कार और 'संघ शरणं गच्छामि' की प्रतिज्ञा लेकर संघ का संदेश सर्व जनता को पहुँचाना उनका कर्तव्य होता था। शिक्षक को संघ सेवा, जनकल्याण, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय संयम, सम्मान पद के विमुक्ता आदि गुणों को धारण करना पड़ता था। छात्र के समान ही बौद्ध शिक्षक त्याग, तपस्या, इन्द्रिय संयम से जीवन व्यतीत करने वाला होता था।

## गुरु का अर्थ

'बोधिपथ–प्रदीप' में गुरु का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि जो संवर देने में समर्थ तथा कृपालु हो, वह सदगुरु है। 'खुद्दकनिकाय' के अनुसार, ''शिक्षक उस नाविक के समान है जो स्वयं नदी पार करने के साथ ही दूसरों को भी पार कराता है।'' 'महावग्ग' के अनुसार, ''तथागत केवल आख्याता अथवा शिक्षक है। उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर तुम्हें स्वयं ही चलना है।'' इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक एक मार्गदर्शक है, किन्तु उसे सबसे पहले उस विषय का अध्ययन, चिंतन एवं मनन करना आवश्यक है, जिसे वे दूसरे को देना चाहते हैं क्योंकि दूसरों को सद्मार्ग पर प्रेरित करने से पूर्व स्वयं को प्रेरित करना आवश्यक है।

## गुरु के गुण

गुरु के गुणों का विवरण हमें 'मज्झिम निकाय' में मिलता है। गुरु को पाप कर्म से लज्जा और भय रखना, शरीर, वचन और मन से शुद्ध कार्य करना, आजीविका का शुद्ध होना, संयमी होना, अल्पाहारी होना, जागरणशील होना, स्मृतिशील होना, समाधि का लाभ होना, पूर्वजन्म की बातों का स्मरण करना, कौन मर कर कहाँ उत्पन्न हुआ यह जानना, अविद्या का नाश कर देना – ये गुण धारण करने चाहिए। वस्तुतः गुरु भिक्षा मांग कर समाजाश्रित होकर समाज के लोगों में ज्ञान का प्रचार करने वाला शिक्षक 'सिच्छक सगरे जगका' होता है। शिक्षक की ऐसी परिकल्पना हमें बौद्ध शिक्षा दर्शन में ही मिलती है।

गुरु बहुश्रुत संयमी, सांसारिकता से परे तथा उत्साही होते हैं। बौद्ध-ग्रंथों में गुरु के लिए विप्र, शास्त्रकर्ता आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इनके अतिरिक्त सुतंत्तक, विनयधर, मातिकाधर आदि शब्द भी देखने को मिलते हैं। धम्म के विद्वानों को सुतंत्तक, विनय के विद्वानों को विनयधर तथा मंत्रादि अर्थात्काएं जानने वाले विद्वानों को मातिकाधर कहा गया है। ये तीनों शब्द भी उपाध्याय के पर्यायवाची जान पड़ते हैं। 'विनयपिटक' में योग्य विनयधर के लक्षण को बताते हुए कहा गया है–

- जो प्रधान शीलों में दोष रहित हो।
- जितेन्द्रिय अर्थात् अपेक्षित आचारवाला और इन्द्रियों में सुसंयमी हो।
- जिसे विरोधी भी धर्म से दोषी नहीं कह सकें।
- विषयों में विशारद हो।
- जो सभा में विचलित न हो।
- जो विहितों की गणना करते समय किसी बात को नहीं छोड़ता।
- प्रत्युत्पन्नमतित्व अर्थात् जो सभा में प्रश्न पूछने पर तुरन्त उत्तर देने में समर्थ हो।
- जो पण्डित काल से प्राप्त उत्तर देने योग्य वचन को कहकर विज्ञों की सभा का रंजन करता हो।
- जो बुजुर्ग भिक्षुओं में भी आदरयुक्त देखा जाता हो।
- अपने मतों की मीमांसा करने में समर्थ तथा विरोधियों के भाव को जाननेवाला हो।
- सुबोध व्याख्या शैली हो जिससे सर्वसाधारण भी बात को समझ पाये।
- प्रश्न का उत्तर देते समय बिना हानि किये अपने सम्प्रदाय के सिद्धांत को नहीं त्यागने वाला हो।
- जो दूतकर्म में समर्थ तथा अपने किये गये कार्य पर अभिमान नहीं करता।

– जो दोनों विभंग को अच्छी तरह जानता हो।
– जो विभंग का कोविद जानता हो।

## गुरु के कर्तव्य

'विनयपिटक' में छात्र के प्रति गुरु के बताये गये कर्तव्य इस प्रकार हैं–

– उपाध्याय को शिष्य पर अनुग्रह करना चाहिए।
– शिष्य को उपदेश देना चाहिए।
– पात्र देना चाहिए।
– यदि शिष्य के पास चीवर नहीं है तो चीवर देना चाहिए।
– यदि शिष्य रोगी हो तो समय से उठकर दातून, पानी आदि देना चाहिए।

बौद्ध शिक्षण-प्रणाली में ऐसा विधान था कि शिष्य के रोगी हो जाने पर गुरु को शिष्य की वे सभी सेवाएँ करनी होती थीं जो शिष्य को गुरु के प्रति करनी होती थीं।

इनके अतिरिक्त 'मिलिन्दप्रश्न' में गुरु के निम्नलिखित पच्चीस कर्तव्यों का वर्णन है–

(1) अमुक गाँव में जा सकते हो, यह बता देना चाहिए।
(2) अमुक विहार में जा सकते हो, यह निर्देशित कर देना चाहिए।
(3) अमुक के साथ बातचीत नहीं करनी चाहिए।
(4) शिक्षार्थी के दोषों को क्षमा कर देना चाहिए।
(5) पूरे उत्साह के साथ सिखाना चाहिए।
(6) शिक्षा बिना किसी अन्तराल के देनी चाहिए।
(7) किसी बात को छिपाना नहीं चाहिए।
(8) बुद्ध-मुष्टि नहीं होनी चाहिए।
(9) पुत्रवत् स्नेह करना चाहिए।
(10) वह अपने उद्देश्य से पतित न हो सके, यह हमेशा प्रयत्न करना चाहिए।
(11) उपाध्याय को शिष्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए।
(12) किस कार्य में सावधान रहे और किस कार्य में नहीं, इसका उपदेश देते रहना चाहिए।
(13) कर्तव्याकर्तव्य का सदा उपदेश देते रहना चाहिए।
(14) शिष्य के शयन आदि पर ध्यान रखना चाहिए।
(15) बीमार होने पर उसकी सेवा करनी चाहिए।
(16) शिक्षार्थी ने क्या पाया, क्या नहीं पाया, इसका ध्यान रखना चाहिए।

(17) शिक्षार्थी के विशेष चरित्र को जानना चाहिए।
(18) भिक्षापात्र में जो मिले, उसे बांटकर खाना चाहिए।
(19) उसे (विद्यार्थियों को) सदा उत्साह देते रहना चाहिए।
(20) अमुक आदमी की संगति कर सकते हो, ऐसा निर्देश देना चाहिए।
(21) धर्म से गिरते देख उसे आगे बढ़ाना चाहिए।
(22) सिखाने योग्य बातों को सिखाने में कभी भी चूक नहीं करनी चाहिए।
(23) विपत्ति आ जाने पर भी उसे छोड़ना नहीं चाहिए।
(24) शिक्षार्थी के साथ मैत्री भाव रखना चाहिए।
(25) समस्त शिक्षा प्रकारों को देकर उसे अभिवृद्ध कर रहा हूँ, ऐसा सोचना चाहिए।

### गुरु के प्रकार

भगवान बुद्ध ने अपने शिष्य मौद्गल्यायन को बताया है कि लोक में पाँच प्रकार के गुरु पाये जाते हैं–

(1) पहला गुरु वह है जो अशुद्ध शीलवाला होने पर भी 'मैं शुद्ध शीलावाला हूँ, मेरा शील अवदात्ता है, निर्मल है, आदि का दावा करता है।
(2) दूसरा गुरु वह है जो आजीविका के अशुद्ध होने पर भी शुद्ध आजीविका होने का दावा करता है।
(3) तीसरा गुरु वह है जो धर्मोपदेश अशुद्ध होने पर भी शुद्ध धर्मोपदेश वाला होने का दावा करता है।
(4) चौथा गुरु वह है तो व्याकरण अर्थात् भविष्य कथन अशुद्ध होने पर भी शुद्ध व्याकरण वाला होने का दावा करता है।
(5) पाँचवाँ गुरु वह है जो ज्ञान-दर्शन अशुद्ध होने पर भी शुद्ध ज्ञानदर्शन वाला होने का दावा करता है।

### बौद्ध एवं जैन दर्शन में शिक्षक संकल्पना का तुलनात्मक अध्ययन

जैन एवं बौद्ध दोनों ही परंपराओं में गुरु को एक आदर्श रूप में स्वीकार किया गया है। जैन दर्शन के अनुसार, वही गुरु श्रेष्ठ है जो महाव्रतों, तपों, समितियों एवं दसों धर्मों का पालन स्वयं ह्रदय से करता हो और अपने छात्रों को इस ओर प्रेरित करने में पूर्णत: समर्थ हो। साथ ही स्वयं सभी विषयों में पारंगत हो। बौद्ध दर्शन के अनुसार, गुरु स्वयं गूढ़ विषयों का चिंतन-मनन करने वाला तथा अपने शिष्य को धर्म के द्वारा बताये गये मार्ग पर आरुढ़ करने में सहायक होना चाहिए।

जैन दर्शन में अपनी आत्मा को ही सबसे बड़ा गुरु स्वीकार किया गया है। जैनियों के

अनुसार, अपनी आत्मा ही गुरु है, वही सदा मोक्ष की अभिलाषा करता है। अर्हन्त, आचार्य आदि सम्यग्दर्शन में निमित्त होने से व्यवहार नय से गुरु हैं। गुरु के रूप में जैन दर्शन में आचार्य, उपाध्याय एवं साधु मुनि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कार्यों की दृष्टि से भी गुरु संघ का वर्गीकरण किया गया है। मुनिसंघ का कुलपति आचार्य या दीक्षागुरु, शास्त्रों का अध यापन कराने वाला शिक्षा गुरु 'उपाध्याय' समयसार आदि के ज्ञाता एवं उपदेश्य साधु माने जाते हैं। इसी प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में उपाध्याय एवं आचार्य दो प्रकार के गुरुओं का वर्णन मिलता है। जो विद्या, चरित्र तथा स्तर की दृष्टि से योग्य होते हैं वही आचार्य और उपाध्याय कहलाते हैं। जो छात्रों को शास्त्र एवं सिद्धांत की शिक्षा दिया करते हैं, वह उपाध याय और जो नये भिक्षुओं के आचरण की देखरेख करें वह आचार्य कहे जाते हैं। यही जैन एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में मूल अन्तर है। जैन परंपरा आचार्य को प्रथम स्थान देती है तथा उपाध्याय को द्वितीय जबकि बौद्ध शिक्षण प्रणाली में उपाध्याय को प्रथम तथा आचार्य को द्वितीय स्थान देती है। जैन परंपरा के अनुसार आचार्य ही संघ का सर्वोच्च अधिकारी होता है। अन्य सब उसके सहायक माने गये हैं। किन्तु बौद्ध परंपरा के अनुसार उपाध्याय संघ का सर्वोच्च अधिकारी होता है और आचार्य उसका सहायक।

जैन एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में गुरु का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। शिक्षण प्रक्रिया चाहे वह आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए हो या लौकिक उद्देश्यों के लिए, गुरु का होना आवश्यक है। डा. मदनमोहन सिंह ने कहा है – प्राचीन भारत में आध्यात्मिक गुरु का बड़ा महत्व था। भारतीय संस्कृति की परंपरा में ज्ञानार्जन के लिए गुरु की सेवा की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया है, चाहे वह वैदिक धर्म हो, चाहे जैन या बौद्ध।

जैन शिक्षण प्रणाली में गुरु ज्ञान, तप, वीर्य आदि पाँच आचारों का नित्य पालन करने वाले तथा अपने शिष्यों को इस ओर प्रवृत्त करने वाले होते हैं। ठीक उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में वर्णित गुरु संवर देने में समर्थ तथा कृपालु कहे गये हैं।

यद्यपि जैन दर्शन एवं बौद्ध दर्शन दोनों ही बालक में अन्तर्निहित शक्तियों एवं गुणों व अवगुणों के विषय में एकमत हैं। उनके अनुसार, छात्र का विकास एवं शिक्षा का स्वरूप छात्र पर ही आधारित होता है, तथापि एक मात्र शिक्षक ही अपने सम्यक् संबुद्ध ज्ञान से छात्र की शिक्षा संबंधी ही नहीं अपितु समस्त कठिनाइयों को सुलझाता हुआ उन्हें स्तरानुसार गूढ़ एवं गुप्त तत्वों के अध्ययन हेतु प्रस्तुत करता है और छात्र में अन्तर्निहित शक्तियों के विकास हेतु सभी सुविधाएँ जुटाता है।

जैन एवं बौद्ध शिक्षण प्रणाली में आचार्य एवं उपाध्याय के गुणों, लक्षणों एवं योग्यताओं में यद्यपि परस्पर समानता दृष्टिगोचर होती है तथापि शिक्षक संदर्भ में जितना अधिक विस्तृत

वर्णन जैन दर्शन में पाया जाता है उतना बौद्ध दर्शन में नहीं। जैन शिक्षा प्रणाली में आचार्य को आचारवान, व्यवहारवान, आधारवान, रत्नत्रय के लाभ और विनाश को देखने वाला, निर्णायक निर्यापक, प्रसिद्ध कीर्तिशाली आदि विभिन्न गुणों से सम्पन्न बताया गया है। आठ आचारवत्व आदि, दस स्थितिकल्प, बारह तप और छः आवश्यक – यह आचार्य के छत्तीस गुण हैं। जबकि बौद्ध दर्शन में उपाध्याय के कुछ ही गुणों एवं लक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है। वही गुरु सच्चा गुरु है जो शील सम्पन्न हो, अहिंसा का पालन करने वाला हो, ब्रह्मचारी, मिथ्या भाषण से विरत हो तथा चुगली, कठोर वचन, विवाद, ऊँची शैय्या आदि से विरत हो।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि जैन और बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षक के रूप, स्वरूप प्रकार और गरिमामय कर्त्तव्यों का विशद विवेचन किया गया है। बदलते समसामयिक समाज में शिक्षक के वर्णित इन्हीं गुणों को धारण करने की आवश्यकता है। वर्तमान में शिक्षक समाज को पुनः आत्म मंथन करने की आवश्यकता है तभी आने वाली पीढ़ी को जागरुक बना सकेंगे और ज्ञान आधारित समाज की रचना कर सकेंगे। आइए हम सभी जैन एवं बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षक के स्वरूप की खोज करें।

## *संदर्भ ग्रंथ*


महानारायणोपनिषद्

मनुस्मृति 2/140, 2/141, 2/142

कठोपनिषद् (शान्ति पाठ)

वाल्मीकि रामायण, पृ. 442

आचार्य विद्यानन्द मुनि, *शिक्षक और समाज* (प्रो. भास्कर मिश्र), नाग पब्लिशर्स, पृ.5

अनान्तज्ञानादिगुरुगुणैस्त्रैलोकस्यापि गुरुस्तं त्रिलोकगुरुं तमित्थं भूतं भगवन्त..... *प्रवचनसार* (तात्पर्यवृत्तिसहित), प्रक्षेपक गाथा, 2/100/24

सुससूसया गुरुणं सम्यग्दर्शनानचारित्रैर्गुरुतया गुरव इत्युच्यन्ते आचार्यापाध्यायसाधवः। *भगवती आराधना, भगवान् महावीर और उनका तत्त्वदर्शन/वि.* 300/511/13

आचार्यः स्यादुपाध्यायः साधुश्रेति त्रिमा मतः। स्युर्विशिष्टपदारूढ़ास्त्रयोऽपि मुनिकुंजराः।। *पंचाध्यायी कवि राजमल्ल,* देवकीनन्दन 1932

यद्धा मोहात्प्रमादाद्वा कुर्याद्यो लौकिकीं क्रियाम। तात्वकालं स नाखर्योऽप्यस्ति चान्तर्व्रताच्युतः।। *पंचाध्यायी कवि राजमल्ल,* देवकीनन्दन 1932

स्वास्मिन् सदाभिलाषित्वादभीष्ट्ज्ञापकत्वतः। स्वयं हि प्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः।। *इष्टोपदेश* 34

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च। गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः।। *समाधि-शतक* 75

अत्मात्मनीवं मोक्षमात्मनः कुरुते यतः। अतो रिपुर्गुरुश्चायमात्मैव स्फुटमात्मनः। *ज्ञानावर्णव* 32/81

निर्जरादिनिदानं य शुद्धो भावश्चिदात्मनः। परमार्हः स एवास्ति तद्वानात्मा परं गुरुः।। *पंचाध्यायी उ., कवि राजमल्ल,* देवकीनन्दन 628

देसकुलजाइसुद्धोणिरुवम-अंगों विसुद्धसम्मत्ते। पढमणिओयकुसलो पईट्ठालक्खणविहिविदण्णू॥ सावयगुणोववेदी उवासयज्झयणसत्थथिरबुद्धि। एवं गुणो पइट्ठाइरिओ जिणसासणे भणिओ॥ *वसुनंदि-श्रावकाचार* 388, 389

जम्हा पंचविहाचारं आचरंतो पभायदि। आयरियाणि उेसंतोआयरिओ तेण उच्चदे।। *मूलाचार, वट्टेकेर, अनन्तकीर्ति ग्रंथमाला,* 509-510

आदेशश्चोपदेशो वा न कर्तव्यो वधाश्रितः। *पंचाध्यायी* उ., कवि राजमल्ल, देवकी नन्दन 648-650

पंचाचारसमग्गा पेचिदियदंतिदप्पणिद्दलणा। धीरा गुणगम्भीरा आयरिया एरियाहोंति। *नियमसार,* कुन्दकुन्दाचार्य, कुन्दकुन्दभारी, फल्टन 1970

अष्टौ ज्ञानाचाराः दर्शनाचाराश्चाटष्टौ पतो द्वादशविधं पंच सतिमयः तिरूत्रो गुप्तयश्च षट्त्रिंशद्गुणाः। *भगवती आराधना,* विजयोदया टीका 528

अपरिस्साई णिव्वावओ य णिज्जावओ पहिदकित्ति। णिज्जावणगुणोवेदो एरिसअसे होदि आयरिओ। *भगवती आराधना,* 418

आचेलक्कुद्देसिय—सेज्जाहर—रायपिंड—किरियम्मे। जेट्ठ पडिककमणे वि य मांस पज्जो सवणकप्पो।। *भगवती आराधना,* 421

छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमच्छयणझाणदाणरदो। *वही*

आमंतेऊण गणिं गच्छम्मि तं गणिं ठवेदूण। तिविहेण खमावेदि हुस बालउंढाउलं गच्छम्। *वही,* 276

अनुगुरोः पश्चद्दिशति विधत्ते चरणक्रममित्यनु दिक् एलाचार्यस्तस्मै विधिना। *वही* 177, 395

छेदयोर्ये प्रायश्चित्तं दत्वा संवेगवैराग्यजनकपरामागमवचनैः संवरणं कुर्वन्ति तेनिर्यापकाः शिक्षागुरवः श्रुतगुरवश्चेति भण्यते।

उत्तराध्ययन, 1/23, 1/24-25, 1/12-13

वट्टकेर, *मूलाचार, अनन्त कीर्ति, ग्रंथमाला* 1976

*मूलाचार प्रदीप,* 447

अमृत चन्द्राचार्य, *तत्वार्थसार,* जैन, सि.प्र. संस्था कलकत्ता, 1929

*महावग्ग,* 1/25-33

*बुद्धकालीन समाज और धर्म,* पृ.170

*एन्सिएन्ट इंडियन एजुकेशन,* 402

*बोधिपथ प्रदीप,* श्लोक 24

*खुद्दकनिकाय,* भाग 1 पृ. 315

*अवदान,* जि. 1/108/5

*दिव्यावदान,* 370/9

*प्राचीन भारत का सामाजिक* इतिहास, ओमप्रकाश, पृ. 228

*विनयपिटक,* पृ. 337-338

*मिलिन्दपहपालि,* पृ.76

*एन्सिएन्ट इंडियन एजुकेशन,* 402-5

**परिप्रेक्ष्य**
वर्ष 19, अंक 3, दिसंबर 2012

*चिंतक और चिंतन*

# सांख्य दर्शन के मूल सिद्धांत तथा आधुनिक शिक्षा में उनकी प्रासंगिकता

**जितेन्द्र कुमार गोयल***

शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। शिक्षा ही वह विशेष निधि है जो इस सम्पूर्ण जगत् में केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। इसके विकास से ही मनुष्य में विवेक का जन्म होता है, वह सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, सही-गलत आदि में विभेद करता है। शिक्षा माँ के समान लालन-पालन करती है, पिता के समान मार्गदर्शन करती है, पत्नी के समान सभी समस्याओं को दूर करते हुए सुख प्रदान करती है तथा मित्र के समान मुसीबत के समय सहयोग प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करती है। उसको देवत्य का दर्शन कराती है, मानवीय मूल्यों की अनुभूति का उसे अवसर प्रदान करती है और स्वानुभूति का मार्ग प्रशस्त करती है। सांख्य शब्द संख्या शब्द से व्युत्पन्न है। सांख्य का अर्थ है सम्यक् व्याख्यान अर्थात सम्यक् ज्ञान या विवेक ज्ञान। सांख्य का अर्थ गणना की संख्या भी है। सांख्य शब्द में दोनों ही अर्थ समाविष्ट हैं। सांख्य सम्यक् ज्ञान का दर्शन है। प्रकृति एवं पुरुष का विवेक ज्ञान तथा सांख्य दर्शन तत्वों की संख्या पच्चीस स्वीकार करता है। यह 25 तत्वों का दर्शन है। इसमें प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ, पंच महाभूत तथा 25वां तत्व पुरुष है।

आज शिक्षा का अत्यधिक भौतिकीकरण मानवता एवं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। मानवतावादी विचारों का दिनों दिन क्षरण होता दिखाई दे रहा है। अतः आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में प्राचीन भारतीय शैक्षिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिससे विद्यार्थी अति भौतिकवादी एवं अति आत्मवादी

* शोध छात्र (शिक्षा संकाय), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विचारधाराओं से बच सकें तथा इनके बीच समन्वय स्थापित कर सकें व एक आदर्श नागरिक बन सकें।

## सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षा का सम्प्रत्यय

सांख्य दर्शन सत्कार्यवादी है। इसके सिद्धान्त के अनुसार कार्य-कारण के पूर्व में सत् रहता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, मानव का विकास मानव में पहले से सतत् होगा। शिक्षा इसे बाहर निकालने का कार्य करती है। सांख्य दर्शन के अनुसार, शिक्षा वह है जो प्रकृति और पुरुष (जड़-चेतन) शरीर और आत्मा के भेद का ज्ञान प्रदान कराती है।

## सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

सांख्य जीवन (पुरुष) का अन्तिम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति मानता है जो पुरुष का विवेक ज्ञान से प्राप्त होता है। अत: जीव का विकास तथा शिक्षा का उद्देश्य बालक को यह दृष्टि प्रदान करना है कि वह प्रकृति एवं पुरुष के भेद को समझ सके तथा दु:ख त्रय से छुटकारा प्राप्त करे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आष्टांग योग तथा नैतिक आचरण आवश्यक हैं।

वर्तमान स्वरूप के अनुसार हम इन उद्दश्यों को अधोलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

**1. शारीरिक विकास :** आधुनिक मनोवैज्ञानिक आलपोर्ट ने मानव को मनोशारीरिक प्राणी माना है। अत: मानव का मानसिक एवं शारीरिक दोनों के स्वास्थ्य पर सांख्य दर्शन बल देता है। सांख्य दर्शन पांच ज्ञानेन्द्रियों (अक्ष, कर्ण, मुख, त्वक् तथा नासिका) के स्वस्थ रहने तथा विकास करने; हाथ, पैर, गुदा, उपस्थि तथा कंठ को भी स्वस्थ रखने की शिक्षा प्रदान करता है। जब तक इन्हें विकास कर प्रशिक्षित नहीं किया जाता, तब तक यह ज्ञानप्राप्ति एवं कार्य करने में असमर्थ रहेगी।

इन्द्रियों के विकास के साथ-साथ सांख्य दर्शन रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द पांच तन्मात्राओं के विकास पर भी बल देता है।

**2. मानसिक विकास :** (मनस तत्व-मनस विकास को उर्ध्वगामी बनाना) सांख्य दर्शन मनोविज्ञान पर विश्वास करता है। मस्तिष्क द्वारा ही वस्तुओं का ज्ञान तथा क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। अत: इन्द्रियों के विकास के साथ-साथ मस्तिष्क विकास भी आवश्यक है। सांख्य योग दर्शन यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और

समाधि के अभ्यास से मनस–तत्व का विकास कर विद्यार्थी के विचार को उर्ध्वगामी बनाता है।

**3. भावात्मक विकास :** (अहंकार तत्व का विकास अहं तत्व की प्रधानता से है) सांख्य के सृष्टि सर्ग में अहं तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करता है। अहं तत्व के विकास से विद्यार्थी कार्य अथवा वस्तु का आत्मीकरण करता है।

**4. बौद्धिक विकास :** (बुद्धि का विकास, उन्हें इन्द्रियों की दासता से हटाना, पुरुष की अनुभूति में संलग्न करना) बुद्धि का कार्य है निश्चयीकरण करना। वह अंहकार द्वारा प्राप्त विषय पर निश्चयीकरण करती है तत्पश्चात कार्य सम्पादित होता है अथवा ज्ञान प्राप्त होता है। अत: अष्टांग योग के निरन्तर अभ्यास से बौद्धिक विकास कर जीवन की पूर्णता की ओर एक सार्थक कदम होगा।

**5. नैतिक विकास :** (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, और अस्तेय तथा शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधन नियमों के पालन की ओर प्रवृत्त करना) सांख्य दर्शन के अनुसार नैतिकता का विकास शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है। अष्टांग योग में यम और नियम नैतिक विकास के साधन हैं। अष्टांग योग में यम की संख्या पांच यथा अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय) तथा पाँच नियम शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं प्राणिधानि हैं जिनके अनुपालन से विद्यार्थियों में हो रहे नैतिक अवमूल्यन पर रोक लगेगी।

**पाठ्यक्रम**

सांख्य दर्शन बालक के विकास में विभिन्न अवस्थाओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का एक मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है–

**शैशवावस्था :** इस अवस्था में बालक की ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का विकास होता है। अत: पाठ्यक्रम का सम्बन्ध इनके विकास से होना चाहिए अर्थात पाठ्यवस्तु के अन्तर्गत समस्त प्राकृतिक तथा भौतिक पदार्थों जैसे – मिट्टी, जल, प्रकाश, वायु तथा आकाश से संबंधित प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करना जिससे बालक को उसका वास्तविक अनुभव प्राप्त हो सके। साथ ही साथ पाँच तन्मात्राओं जिससे पाँच महाभूत तत्वों का निर्माण होता है अर्थात ध्वनि (शब्द), रंग (रूप), स्वाद (रस), गन्ध, स्पर्श संबंधी तन्मात्राओं का पूर्ण ज्ञान प्रदान करना।

चूँकि इस स्तर पर बालक के शब्द भण्डार में वृद्धि होती है, अत: निरन्तर आप्त: वचनों के द्वारा शब्द भण्डार का विस्तार किया जाना चाहिए। शब्द या ध्वनि के अन्तर्गत

उच्चारण, रंग, रूप, तन्मात्रा के अन्तर्गत विभिन्न रंगों तथा वस्तुओं के विभिन आकारों; रस तन्मात्रा के अन्तर्गत विभिन्न स्वाद वाले पदार्थों की पहचान करना तथा उनसे संबंधित अन्य विभिन्नताओं का ज्ञान देना, गन्ध-तन्मात्रा के अन्तर्गत विभिन्न गंधों से संबंधित अनुभव प्रदान करना पाठ्यक्रम की प्रमुख विषय वस्तु होनी चाहिए। शारीरिक विकास के लिए पाठ्यक्रम में शारीरिक अभ्यासों तथा स्वास्थ्य शिक्षा का प्रावधान करना चाहिए।

**बाल्यावस्था :** चूँकि इस अवस्था में शारीरिक व इन्द्रियों से संबंधित अंगों का निरन्तर विकास होता रहता है, अत: शैशवावस्था के लिए दिये गये पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पाठ्यक्रम को और विस्तार देने की आवश्यकता होती है। यह अवस्था मनस के अधिकतम विकास, स्मरण शक्ति के विकास, कल्पना तथ्यों का एकत्रीकरण करना तथा आत्म व अहम् संबंधी प्रत्ययों के निर्माण की सबसे उपयुक्त अवस्था होती है। इस कारण पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान संबंधी तथ्य तथा अन्य आवश्यक तथ्यों को सम्मिलित करना चाहिए, जिन्हें बालक जीवन पर्यन्त स्मरण रख सकें।

**किशोरावस्था :** इस अवस्था में स्व (आत्म) संबंधी प्रत्यय अधिक स्थाई रूप से विकसित हो जाता है तथा बालक में निश्चयकारी बुद्धि का निर्माण होता है। अत: पाठ्यक्रम में विवेचनात्मक विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा बाल्यावस्था में पढ़ाये गये समस्त विषयों को विश्लेषणात्मक रूप देकर प्रस्तुत करना चाहिए, जिसका आधार तर्कसंगत होना चाहिए।

इस अवस्था में बालक विषय वस्तु को बिना तर्क तथा न्याय के सहजता से स्वीकार नहीं करता। उसकी अवधारणाएँ स्थाई हो जाती हैं। उसमें मौलिकता विकसित हो जाती है और वह स्वयं अपना दृष्टिकोण विकसित कर सकता है। अत: पाठ्यक्रम में व्यक्तित्व के इस पक्ष पर आधारित विषय सम्मिलित होने चाहिए।

**विकास की अन्य अवस्थाएँ :** जब तक व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास होता रहता है, तब तक शैक्षिक प्रक्रिया भी निरन्तर चलती रहती है। चाहे विद्यालय शिक्षा समाप्त ही क्यों न हो जाए? अपने जीवनकाल में व्यक्ति को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि प्रकृति तथा पुरुष दो अलग-अलग सत्ताएँ हैं। इनमें अन्तर स्थापित करने के लिए व्यक्ति की शुद्ध चेतनता या विवेक का क्रमश: विकास करना चाहिए। विवेक ज्ञान, व्यवहार तथा आचरण में व्यक्त होना चाहिए।

## सांख्य दर्शन के अनुसार शिक्षण विधियाँ

सांख्य दर्शन का मानना है कि ज्ञान वस्तुओं के विशेष गुणों के माध्यम से होना चाहिए परन्तु गुण बुद्धि पर आरोपित नहीं होते अपितु उन्हें बुद्धि ग्रहण करती है। इस प्रकार ज्ञान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सांख्य दर्शन सिद्धान्त व्यवहारवादी मनोविज्ञान की उद्दीपन अनुक्रिया के समान है। परन्तु दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि उद्दीपन अनुक्रिया में सिद्धान्तानुसार ज्ञान प्रक्रिया बाहर से अन्दर आती है। जबकि सांख्य दर्शन के आधार पर यह प्रक्रिया अन्दर होती है। सांख्य दर्शन के आधार पर निम्न रूप में शिक्षण प्रक्रिया हो सकती है।

**अनुशासन :** सांख्य दर्शन के अनुसार विवेक और ज्ञान प्राप्त करना या दोनों के बीच अन्तर समझने से कैवल्य की प्राप्ति की जा सकती है। इसके लिए कठोर अनुशासन की आवश्यकता होती है। यह अनुशासन योग का विषय है। सांख्य-योग एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ सांख्य सैद्धांतिक पक्ष है, वहीं योग व्यावहारिक पक्ष है। सांख्य तत्व मीमांसा प्रस्तुत करता है जबकि योग उद्देश्य प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। सांख्य में ईश्वरीय तत्व की उपेक्षा की गयी है, जबकि योग में ईश्वरीय तत्व की महत्ता स्वीकार की गयी है। जब तक मनुष्य का मनस या मन पूर्णतया स्थिर व निर्मल नहीं हो जाता तब तक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। एक निर्मल हृदय तथा शान्त मन ही ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर हो सकता है तथा योग ही वह साधन है, जिसके द्वारा शरीर व मन को शुद्ध तथा स्थिर किया जा सकता है।

**सांख्य दर्शन और शिक्षक :** सांख्य दर्शन में अध्यापक या गुरु की सर्वप्रमुख विशेषता मंगलायरणवान, ज्ञान संकल्प एवं स्वकर्मानुष्ठान प्रवृत्त होना बताया गया है। गुरु के वैरागी, दानशील, आत्मज्ञानयुक्त, गृहविहीन, परगृहेसुखी, तथा बहुशास्त्र ज्ञाता होना चाहिए क्योंकि गुरु के ऊपर छात्रों की उज्ज्वल भविष्य की पूरी जिम्मेदारी होती है तथा वह विद्यार्थी को सद्मार्ग पर ले जाने वाला होता है। अत: उसमें उक्त गुणों का होना आवश्यक होता है।

**सांख्य दर्शन और शिक्षार्थी :** सांख्य अनेकान्तवादी दर्शन है। वह छात्र के विशिष्ट तत्व का आदर करता है। वह उसके वैयक्तिक विकास का साधन है, पर वह यह भी मानता है कि आत्म तत्व के साथ उसमें प्राकृतिक तत्व भी है-सत्व, रज एवं तम गुण भी हैं। अत: वह छात्र को नैतिक आचरण का उपदेश देता है या अनुशासन में रहने का उपदेश

देता है, उसी स्थिति में शिष्य आत्म तत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

**सांख्य दर्शन एवं विद्यालय :** सांख्य दर्शन में शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय या शिक्षण संस्थाएँ चलायमान थीं अर्थात् शिक्षा प्रकृति, वन, जंगल, नदी तट आदि किसी भी खुले स्थान पर दी जा सकती थी। परन्तु वर्तमान समय बिना सुनयोजित विद्यालय भवन के शिक्षा प्रदान करना संभव नहीं है। अत: हमें विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर शान्तिपूर्ण स्थान पर विद्यालय की स्थापना करनी चाहिए, जिससे शिक्षण प्रक्रिया सुचारु रूप से सम्पन्न हो तथा छात्रों का सर्वांगीण विकास होने में मदद मिले।

## सांख्य दर्शन की आधुनिक शिक्षा में प्रासंगिकता

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय में सांख्य दर्शन को एक द्वैतवादी विचारधारा के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है। यद्यपि किसी अनेकान्तवादी एवं द्वैतवादी विचारधारा (जड़-चेतन) की मान्यता प्रदान करने एवं सत् मानने के कारण अद्वैत वेदान्ती सांख्य दर्शन की कटु आलोचना करते हैं। तथापि सांख्य दर्शन आज आधुनिक शिक्षा में काफी प्रासंगिक है।

सांख्य दर्शन की आधुनिक शिक्षा में प्रासंगिकता को मूलत: तीन भागों में बांटा जा सकता है :

- ज्ञान मीमांसीय प्रासंगिकता।
- तत्व मीमांसीय प्रासंगिकता।
- आचार मीमांसीय प्रासंगिकता।

ज्ञान मीमांसीय प्रासंगिकता के अन्तर्गत सांख्य के सत्कार्यवाद पर विचार करते हैं। सत्कार्यवाद यह मानता है कि कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व अपने कारण में सत् है। आज की वैज्ञानिक विचारधारा इसी कार्य-कारणवाद के विकास पर टिकी है। अर्थात् एक घटना दूसरी घटना का कारण होती है। आधुनिक पाश्चात्य अनुभववादी दार्शनिक जॉन लॉक एवं बर्कले भी इसे मान्यता प्रदान करते प्रतीत होते हैं। इसके अलावा आशावादी जीवन एवं यथार्थवाद, आदर्शवाद तथा प्रकृतिवाद की शिक्षा कहीं न कहीं सत्कार्यवाद से प्रेरित है।

सांख्य दर्शन ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन मानता है– प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द। इसमें प्रत्यक्षीकरण ने आधुनिक शिक्षा में करके सीखना, प्रायोगिक अनुसंधान, प्रोजेक्ट विधि,

खेल विधि इत्यादि शिक्षण विधियों को काफी हद तक प्रभावित किया है। इसके अलावा ज्ञान के संवादिता सिद्धान्त की भी पुष्टि करता है। जो कि आधुनिक बुद्धिवादी होने से डेकार्त एंव अनुभववादी जॉन लाक का अनुभववाद (वैज्ञानिक यथार्थवाद) तथा वर्कले के सत्ता दृश्यता की पुष्टि करता है।

अनुमान विधि आज की आधुनिक शिक्षण विधि ने प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, सरल से जटिल की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर को जहां प्रेरित किया वहीं सभी तर्क, वितर्क, ज्ञान, अनुसंधान विधि कमोबेश अनुमान शिक्षण से प्रेरित हैं। आगमन विधि, निगमन विधि, विश्लेषण संश्लेषण विधि अनुमान पर ही आश्रित हैं। शोधकर्ता अपना शोधकार्य अनुमान के आधार पर ही आगे बढ़ाता है।

सांख्य में वर्णित शब्द विधि आधुनिक शिक्षा में सर्वव्यापक विधि है। वर्तमान में व्याख्यान विधि, कहानी विधि, साक्षात्कार, शिक्षक की मौखिक युक्तियों और शब्द विधि पर ही आश्रित हैं। इसके अलावा पाठ्यपुस्तकों का ज्ञान उसका अध्ययन मनन करना शब्द से ही सम्भव हो पाता है। आज की प्रिंट एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया शब्द विधि के माध्यम से ही शिक्षण कार्य करते हैं। हम सूचना प्रदान करते हैं। अतः शब्द विधि पर्यवेक्षित अध्ययन का सबसे निखरा रूप है।

सांख्य दर्शन की तत्वमीमांसा द्वैतवाद, विकासवाद, प्रयोजनवाद पर आधारित है। चूँकि आज सभी दर्शन जैसे अद्वैत वेदान्त ब्रह्म को सतत् मानता है तो वहीं स्पिनोजा डेकार्त इत्यादि बुद्धिवादी विचारक द्रव्य को सत् मानते हैं। यथार्थवादी, जड़वादी विचारक जड़ तत्व को ही सत् मानते हैं। ग्रीक विचारक पमैनाइडीज ने माना कि स्थिरता ही सत् है। जबकि डेविड ह्यूम, हेराक्लीटीज, भारतीय बौद्ध दार्शनिक इत्यादि परिवर्तनशीलता को सत् मानते हैं। ऐसे में कहीं न कहीं एकांगी शिक्षा का विकास हुआ। सांख्य दर्शन जड़ एवं चेतन दोनों को सत् मानता है, जिससे एक तरफ इन एकांगी विचारों का समायोजन तो होता है, साथ-साथ एकांगी विचारधारा से उत्पन्न नवीन समस्याओं जैसी पर्यावरण का अवशोषण, महिला शोषण, नस्लवाद इत्यादि का उत्कृष्ट समाधान भी प्रस्तुत करता है। अतः आधुनिक शिक्षा में बालक का सर्वांगीण विकास सांख्य के तत्व मीमांसा से प्रेरित है।

सांख्य को छोड़कर कोई भी दार्शनिक सप्रयोजन विकास की बात ही नहीं करता। आधुनिक शिक्षा में चार्ल्स डार्विन, जीन वैपटिस्ट, डी लैमार्क, ह्यूगो डी ब्रीज इत्यादि

वैज्ञानिक जैव विकास की बात करते हैं, लेकिन ये विकास यांत्रिकीय हैं। लेकिन सांख्य दर्शन मन, अहंकार, बुद्धि, पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों, पांच तंमात्राओं, पांचमहाभूतों इत्यादि के विकास की बात करता है। ये विकास सप्रयोजन हैं जो कि कहीं न कहीं आधुनिक विचारधारा से भी श्रेष्ठकर सिद्ध होते हैं। आधुनिक विचारधारा में सांख्य का विकासवाद जहाँ बालकों में मनोशारीरिक विकास पर जोर देकर आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं प्रयोजनवाद से शिक्षा में जीवन्तता लाता है।

सांख्य दर्शन की आचार मीमांसा अतिवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक है। सांख्य दर्शन अनेकान्तवादी है जो कि जैव विविधता, लोकतांत्रिकता जगत के बहुआयामी एवं उद्देश्यकता, मूल्य आधारित शिक्षा को आधार प्रदान करता है। संसार में विभिन्न प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। किसी में सतोगुण, किसी में रजोगुण तथा किसी में तमोगुण की प्रचुरता होती है। आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान में बालक का विकास, उसकी बुद्धि, समस्याग्रस्त बालक, अपवादग्रस्त बालक, वैयक्तिक विविधता इत्यादि जैसी अवधारणा सांख्य दर्शन की अद्भुत देन कही जा सकती है। इस प्रकार स्तरानुकूल पाठ्यक्रम निर्माण में सांख्य की प्रासंगिकता प्रतीत होती है।

सांख्य दर्शन का व्यावहारिक पक्ष योग दर्शन आज की शिक्षा में नीरसता के स्थान पर बोधगम्यता, अकर्मण्यता के स्थान पर कर्मठता को स्थान देकर बालक के स्वास्थ्य स्वाध्याय एवं शुचिता पर ध्यान देता है। वर्तमान में योग शिक्षा आज की शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है। जो सांख्य/योग का संसार को अद्वितीय देनें कही जा सकती है। आधुनिक शिक्षा में अनुशासन सांख्य के यम, नियम पर आधारित होना चाहिए, न कि कठोर दण्ड पर।

सांख्य दर्शन का अन्तिम लक्ष्य है मोक्ष अर्थात् विवेक ज्ञान। आधुनिक शिक्षा का आदर्शवाद, प्रकृतिवाद इत्यादि विचारधारा बालक के सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान देते हुए जीवन पर्यन्त शिक्षा के माध्यम से बालक के मोक्ष को सुलभ बना देते हैं।

**निष्कर्ष**

सांख्य दर्शन द्वैतवादी है। इसमें प्रकृति अर्थात् जड़ तथा पुरुष अर्थात् आत्म (चेतन) दोनों को सत् एवं स्वतंत्र मानता है। सम्पूर्ण जगत का प्रादुर्भाव एवं विकास इन्हीं जड़ एवं चेतन के सम्मिलन से होता है। सांख्य दर्शन ईश्वर को नहीं मानता जो कि आलोच्य का विषय

हो सकता है तथापि सांख्य दर्शन भौतिकवादी भी है तथा आध्यात्मवादी भी। सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक है। उसकी ज्ञान मीमांसा तथा आचार मीमांसा आज भी प्रासंगिक है।

सांख्य दर्शन के तत्व मीमांसा में इसका प्रकृति सिद्धान्त, पुरुष सिद्धान्त, विकासवाद, प्रयोजनवाद इत्यादि विचार आधुनिक शिक्षा में काफी प्रासंगिक हैं। सांख्य का ज्ञान मीमांसा में सत्कार्यवाद, प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द प्रमाण आते हैं। सांख्य के मूल्य अर्थात आचार मीमांसा में योग शिक्षा, मूल्यपरकता, त्रिगुणात्मकता, विवेक ज्ञान को महत्व प्रदान करता है। इसके अलावा सांख्य दर्शन मोक्ष अर्थात, विवेक ज्ञान को महत्व प्रदान करता है। यद्यपि भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग एवं ज्ञानमार्ग मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन हैं किन्तु सांख्य दर्शन ज्ञान मार्ग को महत्व प्रदान करता है।

आधुनिक शिक्षण की प्रत्येक विधा में जैसे शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, विद्यालय अनुशासन, पाठ्यसहगामी क्रियाओं में सांख्य दर्शन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आधुनिक शिक्षा की वर्तमान प्रवृत्तियों में मानववाद, तार्किक भाववाद, लोकतंत्र, अस्तित्ववाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, प्रयोजनवाद यहाँ तक कि भौतिकवाद भी बालक को पर्याप्त महत्व प्रदान करता है, बालक को सर्वोत्तम विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। लेकिन उपरोक्त विचारधारा सांख्य दर्शन से कहीं न कहीं अवश्य प्रभावित होती है। यह सांख्य दर्शन का स्वयं में एक महत्व सिद्ध करता है।

सांख्य का व्यावहारिक पक्ष योग दर्शन है। जबकि दुनिया में धन की लिप्सा बढ़ रही है। ऐसे में व्यक्ति की जीवनचर्या यंत्रवत हो गयी है। इससे उनमें विभिन्न प्रकार के रोग एवं बीमारियों ने स्थान बना लिये हैं। सांख्य दर्शन योग के माध्यम से इन व्याधियों को न सिर्फ ठीक करता है, अपितु एक स्वस्थ एवं सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है।

## *सन्दर्भ*

कृष्ण, ईश्वर (1948) : सांख्य कारिका, अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित, एस.एस. सूर्य नारायण शास्त्री मद्रास वि.वि.

भट्टाचार्य, रमाशंकर: सांख्य दर्शन (सांख्य सूत्र तत्व समाससूत्र) तथा सांख्य सार सटीक, वाराणसी

पतंजलि : योग सूत्र

यादव, प्रतिभा : पतंजलि योग दर्शन एवं आधुनिक शिक्षा

देवराज, नन्द किशोर (1983) : भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ

सर्वपल्ली, राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन

श्रीमद्भगवद्गीता (2006) : गीताप्रेस, गोरखपुर

शर्मा, चन्द्रधर (2006) : भारतीय दर्शन, आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल व बनारसीदास, दिल्ली

मंगल, एस.के., मंगल, उमा (2007) : योग शिक्षा, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, दिल्ली

लाल, रमन बिहारी (2007) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ

माथुर, एस.एस. (2006) : शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

वर्मा, डॉ. वेद प्रकाश (2005) : धर्म दर्शन की रूपरेखा, दिल्ली हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

पाठक राममूर्ति (2006) : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद

निगम डा. शोभा (2003) : पाश्चात्य दर्शन के सम्प्रदाय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली